नैतिक कथाएँ

H
813.31
C 393 N

H
813·31
C 393 N

राम जीवन चौधरी

नैतिक कथाएँ

•

रामजीवन चौधरी

•

नवसाक्षर संस्थान
इलाहाबाद

Library IIAS, Shimla
H 813.31 C 393 N
00104328

H
813.31
C 393 N

Indian Institute of A
ACC NO. 104328
DATE 26-3-02
SHIMLA

Rs. 50.00

प्रकाशक : नवसाक्षर संस्थान, 9 महिलाग्राम कालोनी, सूबेदारगंज, इलाहाबाद
संस्करण प्रथम 2000
टाइप सेटिंग : एवन स्क्रीनर प्रिन्टर्स, दरियाबाद, इलाहाबाद
मुद्रक केशव प्रकाशन, इलाहाबाद
मूल्य रुपये पचास मात्र

दो शब्द

आज मूल्यों का संकट सबसे बड़ा है। सदियों से उपनिषद, पुराण आदि ग्रन्थों द्वारा मानव को सदाचार की ओर प्रेरित करने के प्रयास हमारे देश में होते रहे हैं। मन इतना चंचल होता है कि इस पर अंकुश लगाने के लिये सतत प्रयास आवश्यक है। इस छोटी–सी पुस्तक में आख्यानों के माध्यम से उसी दिशा में प्रयास है। सदाचार आज जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता है। आशा है इससे पाठक विशेषकर बालक और युवा लाभान्वित होंगे।

--रामजीवन चौधरी

अनुक्रम

हृदय का प्यार	७
कृपण–कथा	१०
तेती पाँव पसारिये जेती लाँबी सौर	१२
वास्तविकता न भूलें	१५
गुरु की परख	१९
देवता और असुर	२२
निकम्मापन	२५
आत्मा मुख्य है, शरीर नहीं	२७
वास्तविक साथी	३०
महाचाण्डाल	३३
विषयासक्त इंद्रियाँ	३५
निकृष्ट भावनाओं से उत्साह हीनता	३८
राजा भोज एवं कवि कालिदास	४०
शिव–भक्त उपमन्यु	४३
जिज्ञासु राजा जनक	४६
स्वर्ण की बेड़ी भी बंधन कारक	४९
आधार ही मुख्य है	५२
एकनाथ और श्रीखण्डिया	५४
परीक्षा	५६
मित्र का द्रोह	६०
गरीब की खोज	६१
कार्य में अनेक विघ्न	६३

अन्तिम समय में	६५
संत तुकारामजी व पिशाच	६७
क्रोध ही अपराध है	६६
श्रद्धा और विश्वास	७१
प्रेम के मार्ग में अभिमान	७३
कौन कातेगा?	७६
अपवित्र कौन?	७८
नस–नस में भक्ति	७६
दिखता है, लेकिन मिलता नहीं	८१
सज्जन की सज्जनता	८३
संयम के कारण	८५
सादगी	८६
अच्छी फसल	८७
आपसी फूट	८८
स्वावलम्बन	८६
अद्भुत कर्त्तव्य पालन	६०
भगवान का पेट कब भरता है	६१
सहृदयता	६३
हृदय–परिवर्तन	६४
समय का मूल्य	६६

□□

हृदय का प्यार

रूस के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री टालस्टाय ने एक कहानी लिखी हैं। एक थे पदारी महोदय, बहुत बड़े धर्म-प्रचारक। स्थान-स्थान पर जाकर लोगों को ईसा मसीह का उपदेश देते। वे प्रार्थना सिखाते जो बाइविल में लिखी है। लोगों से कहते, "यह प्रार्थना करो तुम्हारा कल्याण होगा।" देश के बाहर दूसरे देशों में भी वे धर्म प्रचार हेतु गये। जहाज से जाते हुए उन्होंने समुद्र में एक छोटा-सा द्वीप देखा सोचा, शायद यहाँ भी कोई व्यक्ति हो, चलो उसके पास चलें, उसे ईश्वर से प्रार्थना करने का मार्ग बतायें । वे द्वीप में उतर पड़े। इधर-उधर देखा, परन्तु कोई दिखाई नहीं दिया। मन-ही-मन कुछ सोच रहे थे तभी द्वीप के दूसरी ओर से तीन बूढ़े आते दिखाई दिये। पादरी महोदय रुक गये। बूढ़े निकट आये तो पादरी ने देखा उनकी दाढ़ियाँ सफेद हैं, सिर के बाल भी सफेद हैं। वृक्षों की छाल से उन्होंने अपना शरीर ढाँक रखा है, कोई भी वस्त्र उनके पास नहीं। पादरी ने पूछा, "यहाँ कोई ग्राम अथवा नगर नहीं है? "

एक वृद्ध ने कहा, "नहीं, इस द्वीप में हम तीन ही रहते हैं, चौथा कोई नहीं। फल हैं वही खा लेते हैं; पानी है, पी लेते हैं। कभी कोई भूला-भटका इधर आ जाता है तो उसे भी खिला-पिला देते हैं।"

पादरी ने कहा, "बस यही करते हो। भला उस ईश्वर को भी याद करो जिसने तुम्हें उत्पन्न किया है।"

दूसरे वृद्ध ने कहा, "उसे तो हम स्मरण करते ही हैं। क्यों

कि ईश्वर-स्मरण के अतिरिक्त हमारे पास और कोई काम है ही नहीं।''

पादरी ने पूछा, ''किस प्रकार स्मरण करते हो?''

तीसरे वृद्ध ने कहा, ''हम तीनों बैठ जाते हैं, आकाश की ओर देखते हैं, हाथ उठाकर कहते हैं--''हम तीन हैं, तुम तीन हो हमारी रक्षा करो।''

पादरी ने सोचा, ''यह क्या मूर्खों की-सी प्रार्थना है? उसने कहा तुम लोग बूढ़े हो गए। सारा जीवन तुमने नष्ट कर दिया। बैठो, तुम्हें वास्तविक प्रार्थना सिखाता हूँ।

इसके पश्चात् पादरी ने पर्याप्त समय लगाकर, काफी प्रयत्न के बाद बाइबिल में लिखी हुई प्रार्थना उन्हें सिखायी। जब उसे तसल्ली हो गई कि वे प्रार्थना ठीक प्रकार से सीख गये हैं तो अपने जहाज में बैठ कर चल दिया। चलते हुए एक दिन व्यतीत हो गया। दूसरे दिन प्रात: जहाज पर खड़े एक व्यक्ति ने पीछे की ओर देखकर कहा, ''दूर वह काला-सा धब्बा क्या है?''

पादरी ने पीछे की ओर देखा, बोला, ''कुछ है तो सही, जैसे कोई द्वीप हो; परन्तु उधर से ही तो हम आये हैं, उधर कोई द्वीप नहीं था। उन बूढ़ों वाला द्वीप बहुत पीछे रह गया है।''

तभी उस व्यक्ति ने पुन: कहा, ''पादरी जी! एक नहीं तीन धब्बे हैं, वे और बड़े होते जा रहे हैं।'' पादरी ने भी देखा, बोला ''सचमुच ये तो तीन हैं और बड़े होते जा रहे हैं, जैसे हमारे समीप आ रहे हों।''

उस व्यक्ति ने कहा, ''परन्तु हम तो भयभीत हो रहे हैं।'' तभी पादरी ने ध्यान से देखते हुए कहा, ''अरे! यह द्वीप नहीं समुद्री पशु प्रतीत होते हैं, बढ़े चले आ रहे हैं।

किन्तु कुछ ही देर में जहाज वालों ने देखा कि वे पशु नहीं

वहीं तीनों वृद्ध हैं, जिन्हें एक दिन पूर्व उस द्वीप में प्रार्थना सिखा कर आये थे। इस समय तीनों पानी पर दौड़े आ रहे थे। हाथ उठा-उठाकर आवाज भी दे रहे थे। पादरी ने चिल्ला कर कहा, "जहाज रोको!"

जहाज रुका, परन्तु पादरी महोदय चकित थे कि ये लोग पानी पर कैसे दौड़ रहे हैं, डूबते क्यों नहीं? इतने में ही उन तीनों बूढ़ों ने जहाज में आकर कहा, 'पादरी महोदय! हम अनपढ़ व्यक्ति हैं। आप जो प्रार्थना हमें सिखा आये थे, वह हम भूल गये। उनके शब्द ठीक प्रकार से स्मरण नहीं आते। कृपा कर उन्हें फिर से सिखाइये।"

पादरी ने आश्चर्य से उनकी ओर देखा, और कहा, "मगर तुम पानी पर दौड़े किस प्रकार।"

एक वृद्ध ने कहा, "यह तो साधारण बात है, पादरी महोदय।" हम भगवान से बोले, "हमें पादरी महोदय के पास जाना है, नौका हमारे पास है नहीं। दौड़ हम लेंगे भगवान् कृपा करो कि हम दौड़ते चले जाएँ, पानी में डूब न जायँ और हम चल पड़े।"

पादरी ने हाथ जोड़ लिया, सिर झुका दिया उनके सामने धीरे से बोला, "महात्माओं! आप लोग वापस जायँ। वहीं प्रार्थना करें जो पहले किया करते थे। ईश्वर हृदय की आवाज सुनता है, उसे शब्दों की आवश्यकता नहीं।"

यह एक काल्पनिक कहानी है। लेखक महोदय इस कथा के माध्यम से यह बताना चाहते हैं कि वह आनन्द सिन्धु, करुणा निधान भगवान् हृदय के प्यार को देखता है। आपके हृदय में उसके लिए यदि सच्चा प्यार है तो वह मिलेगा अवश्य।

□□

कृपण-कथा

कृपणता एक प्रकार की अनुदारता है। कृपण व्यक्ति से न तो दूसरे का हित होता है और न अपना ही। यहाँ पर कई कृपणों (कंजूसों) की कथा संक्षेप में दी जा रही है।

एक कंजूस था, जो घी के डब्बे को अच्छी प्रकार बाँधकर एक दीवार के साथ लटकाये रखता और भोजन करते समय उसकी ओर देखकर सूखी रोटी और बिना घी की सब्जी खा लेता था। वह व्यक्ति एक दिन एक दूसरे कंजूस से मिला। दोनों अपनी--अपनी कृपणता की बातें करने लगे। घी वाले ने कहा, "मैंने दो वर्ष पूर्व एक लोटा घी खरीदा था, अभी तक उसका बहुत बड़ा भाग ज्यों का त्यों पड़ा है।"

दूसरे कंजूस ने पूछा, "तुम उसका प्रयोग कैसे करते हो?"

पहला बोला, "भोजन करते समय उसकी ओर देख लेता हूँ। उसकी गंध सूँघ लेता हूँ।

दूसरे ने कहा, "बहुत अपव्ययी हो तुम! अरे, घी रोटी के ऊपर भले ही मत लगाओ, हवा लगने से वह कम तो होता है। उसका रस तो सूखता है। हमारे घर में साठ वर्ष पूर्व का एक पंखा है। मेरे दादा ने उसे खरीदा था। सारा घर इसका प्रयोग करता है। अभी तक वह जयों का त्यों है। बिल्कुल वैसा जैसा साठ वर्ष पूर्व था।"

पहले ने कहा, "यह कैसे हो सकता है? तुम सब जब साठ वर्ष से उसका प्रयोग करते हो तब कुछ न कुछ तो वह घिसा ही होगा।"

दूसरे ने उत्तर दिया, "तुमने सबको अपने जैसा मूर्ख समझ लिया है। अरे, प्रयोग करने की विधि तो पूछ। हमने पंखे को एक संदूक में बन्द कर रखा है। संदूक पर ताला लगा है। हमारे घर में जिस व्यक्ति को गर्मी लगती है वह उठता है, संदूक के इर्द-गिर्द चक्कर लगा लेता है; समझ लेता है कि हवा आ गई।"

एक तीसरा व्यक्ति भी वहाँ खड़ा था। वह बोला, "तुम इसे मितव्ययिता कहते हो? अरे, संदूक के इर्द-गिर्द बार-बार चलोगे तो फर्श कितना घिस जायेगा?"

दूसरे ने पूछा, "फिर क्या करें?"

तीसरे ने उत्तर दिया, 'जैसा हम करते हैं। हमारे पास भी एक पंखा है। रखा है संदूक में। संदूक में ताला लगा है। घर में जिसको गर्मी लगे, वह संदूक के पास जाकर एक स्थान पर खड़ा होकर दायें-बायें हिलता है, उसे हवा लग जाती है।"

वहीं पर एक चौथा कंजूस भी था। वह बोला, "तुम सब अपव्ययी हो। हमने पंखा कभी खरीदा ही नहीं। जब गर्मी लगती है, सड़क की पटरी की ओर एक मकान में लगे पंखों को देख लेते हैं, इसी से तसल्ली हो जाती है।"

❑❑

तेती पाँव पसारिये जेती लाँबी सौर

अकबर बादशाह बैठे थे राजसभा में। एक कारीगर ने एक बहुत सुन्दर रेशमी चादर लाकर उन्हें दी। बहुत अच्छे और सुन्दर रंगों के फूल उस पर बने थे। महाराज ने चादर खोली और देखी कि उनके शरीर से कुछ छोटी है। तभी उन्हें एक बात सूझी। चादर को ओढ़कर बोले, ''देखो भाई, मैं फर्श पर लेटता हूँ। चादर को मेरे ऊपर ओढ़ा दो।''

अकबर भूमि पर बिछे कालीन पर लेट गये। कारीगर ने चादर उन पर ओढ़ाई तो पाँव खुले रह गये। पाँव ढाँपे तो सिर की ओर खुला रह गया। बादशाह ने कहा, ''अरे! छोड़ो, तुम एक अशिक्षित शिल्पी हो। ये बड़े-बड़े विद्वान दरबारी बैठे हैं, इन्हें यह कार्य करने दो। आओ भाई चादर को इस प्रकार ओढ़ाओ कि कोई अंग नंगा न रहे।''

उसमें से एक व्यक्ति बाहर आये। उन्होंने प्रयत्न किया, परन्तु परिणाम वही, सिर ढका तो पाँव खुले रह गये, पाँव ढके तो सिर पर चादर नहीं। बादशाह अकबर ने क्रोध से कहा, ''मूर्ख हो तुम! हटो यहाँ से, किसी दूसरे को आने दो।''

एक और व्यक्ति आए। उन्होंने भी प्रयत्न किया परन्तु परिणाम फिर वही। तब एक व्यक्ति और आए, फिर और, फिर और, फिर और........। जो, भी दरबारी आया कोई भी अकबर बादशाह के ऊपर वह चादर इस प्रकार नहीं ओढ़ा पाया कि सारा शरीर ढक जाय।

बादशाह उठकर बैठ गये, बोले--'तुम सब मूर्ख हो। यह छोटी सी बात भी नहीं कर सके।'' किसी ने कहा, ''महाराज! चादर ही छोटी है फिर हम क्या करें?'' अकबर ने कहा, ''आने दो बीरबल को, इस समस्या का समाधान करेगा।'' तभी बीरबल वहाँ आ पहुँचे, बोले, महराज! आप किस चिन्ता में हैं?''

अकबर ने कहा, ''बीरबल! ये सब दरबारी तुमसे ईर्ष्या करते हैं, कहते हैं कि हम जो तुम्हारा अधिक मान-सम्मान करते हैं, वह व्यर्थ ही करते हैं। सचमुच तुम्हारे गुणों की इन्हें परख नहीं है। आज इन्हें बताओ कि तुममें क्या विशेषता है। यह चादर है, हम चाहते हैं, इससे हमारा शरीर ढक जाय, परन्तु ढकता नहीं है।''

बीरबल ने चादर हाथ में लेकर देखी कि वस्तुत: वह छोटी है। बोले ''क्या चाहते हैं आप?''

बादशाह ने कालीन पर लेटकर कहा, ''इसको हमारे ऊपर इस प्रकार ओढ़ा दो कि शरीर का कोई अंग खुला न रहे।''

बीरबल ने कहा, यह तो कोई कठिन कार्य नहीं है परन्तु कृपा कर आप ठीक से लेटिये!''

अकबर ने पूछा, ''ठीक किस प्रकार से?'' बीरबल ने कहा, ''जैसे बच्चा सोता है, टाँगें छाती के साथ लगाकर, पैर समेट कर।''

महराज वैसे ही लेट गये। बीरबल ने चादर उनके ऊपर ओढ़ा दी। सारा शरीर ढक गया, पाँव से सिर तक। बीरबल ने हँसते हुए कहा, ''महाराज! जितनी चादर हो उतना ही पाँव फैलाना चाहिये। तभी ठीक प्रकार से काम बन पाता है।''

तभी से यह मुहावरा आरम्भ हुआ कि 'तेती पाँव पसारिये जेती लाँबी सौर'। जितनी आय है उससे कम खर्च करो। अधिक व्यय करोगे तो काम नहीं चलेगा। तुम्हारा अपना ही खर्च पूरा नहीं होगा तो दूसरे की सहायता तुम क्या करोगे?

❑❑

वास्तविकता न भूलें

एक बहुत साधारण व्यक्ति था। वह कम पढ़ा-लिखा होने के साथ निर्धन भी था। नौकरी की तालाश में वह बम्बई पहुँचा। बम्बई में और कोई नौकरी तो मिली नहीं, एक सेठ जी के यहाँ झाडू देने का काम करने लगा। प्रतिदिन प्रातःकाल आता, लम्बी-चौड़ी दुकान में झाडू लगाता। दिन में भी कई बार सफाई करता और जब भी खाली समय मिलता कोई न कोई किताब लेकर बैठ जाता। पढ़ता भी, लिखता भी। उसकी लिखावट बहुत सुन्दर थी। एक दिन सेठ ने उसे लिखते हुए देखा; बोले, "अरे! तू लिखना भी जानता है?" वह बोला "जी थोड़ा-थोड़ा लिख लेता हूँ।"

सेठ जी ने उसे चिट्ठियां लिखने पर लगा दिया। अब वह खूब परिश्रम से सँवारकर चिट्ठियां लिखने लगा। उसके लिखने का और विषय को प्रस्तुत करने का ढंग बहुत सुन्दर था। चिट्ठी में हिसाब-किताब की बात आती तो उसे भी वह खूब अच्छी प्रकार समझा बुझाकर लिखता।

सेठ जी ने एक दिन उसके द्वारा लिखे गये पत्र को देखा, बोले, "अरे! तू हिसाब-किताब भी जानता है?" वह बोला, "जी थोड़ा-बहुत जानता हूँ।"

सेठ जी ने उसे मुनीम बना दिया। थोड़े समय बाद ही उसके कार्य से प्रसन्न होकर उसे हेड मुनीम बना दिया। अब दूसरे मुनीम जलने लगे।

ईर्ष्या का भाव बहुत है हमारे अन्दर। किसी दूसरे व्यक्ति ने तीन मंजिल का मकान बना लिया तो हम उसे देख-देखकर दिन-रात जलते रहते हैं, बिना आग के जलते रहते हैं। सेठ जी

के यहाँ के अन्य मुनीम भी जलने लगे। दूसरी तो कोई बात उन्हें सूझी नहीं, सोचा, सेठ जी के कान भरेंगे, निन्दा करेंगे; तो इसकी मुनीम की पदवी छिन जायेगी। परन्तु निन्दा करने की कोई बात नहीं मिली। वह सेठ के मकान में रहता था, उसे दो कमरे मिले थे। एक कमरा खुला रखता था, एक बन्द। प्रतिदिन बाहर जाने से पूर्व वह इस बन्द कमरे में जाता, फिर थोड़ी देर पश्चात् बाहर निकल आता। ताला बन्द करके, चाबी जेब में रखकर दुकान पर पहुँच जाता और प्रात: से रात्रि तक अपना काम करता रहता।

जलने वालों को ऐसी कोई बात मिली नहीं, जिसे वे सेठ जी से कहें। एक दिन किसी ने उसे दुकान पर आने से पूर्व इस बन्द कमरे में जाते देखा सन्देह हुआ कि इस कमरे में क्यों जाता है? इसको बन्द क्यों रखता है?

बस, सेठ जी के कान भरे जाने लगे, "यह हेड मुनीम बेईमान है, रुपया खा लेता है, हिसाब में गड़बड़ करता है। यह सेठ जी का दिवाला निकाल देगा।"

सेठ जी ने सुना तो कहा, "मैं इस प्रकार मानूँगा नहीं, मुझे पता है कि वह बहुत ईमानदार है। तुम लोग केवल ईर्ष्या के कारण ऐसा कहते हो।"

एक दिन वह अपने उसी बन्द कमरे में गया, अन्दर पहुँच कर उसने द्वार बन्द कर लिया। दूसरे लोगों ने देखा तो दौड़े हुए सेठ जी के पास पहुँचे, बोले, "चलिए सेठ जी! चोर पकड़ा गया है। वह बेईमान मुनीम इस समय अपने चुराये हुए रुपयों को गिन रहा है। इसी समय चलिये, वह रुपयों के साथ पकड़ा जायेगा।"

सेठ जी तेजी के साथ पहुँचे। देखा, सचमुच कमरे का द्वार अन्दर से बन्द है। गरजकर बोले, "कौन है अन्दर? दरवाजा खोलो!"

बड़े मुनीम ने अन्दर से आवाज दी, "मैं हूँ सेठ जी!"

दूसरे लोगों ने ईर्ष्या भरे स्वर में कहा, "देखिये हम कहते थे ना।"

सेठ जी ने क्रुद्ध होकर कहा, "अन्दर क्या कर रहे हो? दरवाजा खोलो!

बड़े मुनीम ने उत्तर दिया, "जी! कोई विशेष काम तो नहीं कर रहा हूँ।"

सेठ जी गरजे, "फिर दरवाजा खोलते क्यों नहीं।"

बड़े मुनीम ने कहा, "अच्छा सेठ जी! थोड़ी देर ठहरिये खोल दूँगा दरवाजा।"

सेठ जी पुनः चिल्लाए, "अभी इसी समय खोलो, नहीं तो हम दरवाजा तोड़ देंगे।"

बड़े मुनीम ने अन्दर से द्वार खोल दिया। सेठ जी और दूसरे लोग कमरे में प्रविष्ट हुए। देखा कि वहाँ साधारण बक्स के अतिरिक्त कुछ नहीं था। सारा कमरा खाली पड़ा था।

सेठ जी ने कहा, "इस सन्दूक में क्या है?" मुनीम जल्दी से सन्दूक पर बैठ गया। हाथ जोड़कर बोला, अन्नदाता! यह मत पूछो। सन्दूक बन्द ही रहने दो।"

दूसरे लोगों ने कहा, "इसी में तो सब-कुछ है, इसीलिए खोलने नहीं देता।"

सेठ जी ने कहा, "क्या है इसमें? खोलो, हम इसे देखेंगे।"

मुनीम जी ने बैठे-बैठे कहा, "इसमें कुछ नहीं है सेठ जी! इसे न खुलवाइये। इसमें काम की वस्तु नहीं है।"

सेठ जी ने कहा, "हट जाओ आगे से, हम इसे अवश्य देखेंगे।"

मुनीम की आँखों में आँसू आ गये। धीरे से वह उठा, एक ओर हो गया। सेठ जी ने अपने हाथ से संदूक खोला। अन्दर देखा, आश्चर्य से पूछा, "अरे यह क्या है?"

उसमें थी एक फटी हुई धोती, एक मैला-सा कुर्त्ता, एक पुराना टूटा हुआ जूता।

सब लोगों ने उन वस्तुओं को देखा। कोई भी इनका अर्थ नहीं समझ सका। बड़े मुनीम ने हाथ जोड़कर सिर झुकाकर भूमि की ओर देखते हुये कहा, "ये वे वस्त्र हैं सेठ जी, जिन्हें पहनकर कई वर्ष पूर्व मैं इस नगर में आया था और आपकी सेवा में उपस्थित हुआ था। आपसे नौकरी की प्रार्थना की थी और आपने कृपा करके मुझे दुकान में झाड़ू देने की नौकरी दी थी। आपकी उस कृपा को मैं भूल न जाऊँ, मैं अपनी वास्तविकता को याद रख सकूँ, मेरे हृदय में कभी अभिमान न जागृत हो उठे, इसलिये प्रतिदिन प्रात:काल दुकान पर जाने से पूर्व इन वस्त्रों को देखता हूँ और प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि प्रभो! मुझे अभिमान से बचाएँ और मुझे शक्ति दें कि मैं अपने सेठ जी की सेवा अधिक से अधिक परिश्रम और ईमानदारी के साथ कर सकूँ।"

सेठ जी ने यह बात सुनी तो उनकी आँखों में आँसू आ गये। आगे बढ़कर उन्होंने मुनीम जी को अपनी छाती से लगा लिया, बोले, "धन्य हो मुनीम जी! तुम्हारी भाँति सब लोग करें तो दुनिया से पाप का नाश हो जाये, क्योंकि अभिमान ही पाप का मूल है।"

यह है नम्रता की महिमा!

अरे मानव! अपनी वास्तविकता को न भूल! बहुत अभिमान है तुझे, बहुत घमण्ड है कि मैं वह हूँ। मैंने यह कर दिया और वह कर दिया। अरे, यह अभिमान तुझे पतन की ओर ले जायेगा। इसे छोड़ और अपनी वास्तविकता को याद कर।

❑❑

गुरु की परख

सन्त दादू चले गये एक नये स्थान में। नगर से दूर जंगल में रहने लगे। ज्यों-ज्यों लोगों को पता लगा, त्यों-त्यों वे जंगल में आकर ही प्रभु-भक्ति का अमृत पाने लगे। शहर के कोतवाल ने भी सन्त दादू के संबन्ध की बातें सुनीं। उनके मन में भी आया कि चलकर उस महात्मा के दर्शन करूँ, जिसकी प्रशंसा कितने ही लोग करते हैं। अपने घोड़े पर चढ़कर कोतवाल जंगल की ओर चल दिये। काफी दूर जाने पर भी संत दादू का पता नहीं लगा। हाँ एक व्यक्ति अवश्य दिखाई दिया दुबला पतला शरीर, केवल एक लंगोटी पहने, वह झाड़ियों को साफ कर रहा था। मार्ग की झाड़ियों को काटता और बाहर फेंक देता, ताकि मार्ग साफ हो जाय। कोतवाल ने उसके पास जाकर पूछा, "अरे ओ! तुझे पता है कि सन्त दादू कहाँ रहते हैं?

उस व्यक्ति ने कोतवाल की ओर देखा परन्तु बोला नहीं। कोतवाल ने समझा, यह बहरा है, चिल्लाकर बोले, "अरे मूर्ख, मैं पूछता हूँ कि दादू कहाँ रहता है?"

इस बार उस व्यक्ति ने कोतवाल की तरफ देखा भी नहीं, अपना काम करता रहा।

कोतवाल को क्रोध आ गया। जिस चाबुक से वह घोड़े को चलाता आया था, उसी से उस व्यक्ति को मारने लगा। चाबुक से उस व्यक्ति के शरीर पर नीले-नीले निशान पड़ गये। इतने पर भी वह व्यक्ति नहीं बोला, तो कोतवाल साहब ने चाबुक का डण्डा उसके सिर पर दे मारा और चिल्लाकर कहा, "मूर्ख की

संतान! 'हाँ' या 'ना' भी नहीं कह सकता?'' परन्तु वह व्यक्ति फिर भी नहीं बोला। उसके सिर पर से रक्त बहने लगा। उसकी ओर भी उसने ध्यान नहीं दिया।

खून देखकर कोतवाल साहब रुके, समझे, यह व्यक्ति गूँगा और बहरा ही नहीं, पागल भी है। घोड़े को लेकर वे आगे बढ़े। थोड़ी ही दूर बढ़े थे कि एक व्यक्ति आगे की तरफ जाता हुआ मिला। कोतवाल ने उससे भी पूछा, ''अबे ओ राहगीर! तुझे पता है इस जंगल में दादू कहाँ रहते हैं?

उस व्यक्ति ने कहा, ''आपको इसी मार्ग पर पीछे दिखाई नहीं दिये? मैं तो अभी उन्हें देखकर आया हूँ।''

कोतवाल ने पूछा, कहाँ हैं वे?

उस व्यक्ति ने कहा, ''इस रास्ते पर पीछे तो थे। लंगोटी पहने मार्ग की काँटेदार झाड़ियाँ काट रहे थे, जिससे मार्ग चलने वालों को कष्ट न हो।''

कोतवाल ने आश्चर्य से मुँह फाड़कर कहा, ''कौन? वह लंगोटी वाला, दुबला-पतला-सा व्यक्ति?''

यात्री ने कहा, ''वही तो, वही तो महात्मा दादू हैं! आपने शायद उनकी ओर ध्यान नहीं दिया, उन्हें पीछे छोड़ आये।''

कोतवाल ने जल्दी से घोड़ा मोड़ा। वापस उस व्यक्ति के पास पहुँचे जिसके शरीर पर अब भी चाबुक के चिन्ह थे और जिसने अपने सिर पर पट्टी बाँध ली थी। उसके पास जाकर बोले, ''आप, आप क्या दादू हैं?''

उस व्यक्ति ने मुस्कराकर उनकी ओर देखा, धीमे से बोला, ''इस शरीर को दादू भी कहते हैं।''

कोतवाल जल्दी से घोड़े से उतरा, उनके पैरों पर गिर

पड़ा। दुःखभरी आवाज में बोला, "क्षमा कर दो महाराज! मैं तो आपको गुरु बनाने के लिए आया था।"

दादू ने उसे प्यार से उठाया! बोला, "तो फिर यह दुःख किसलिए? व्यक्ति साधारणतः घड़ा खरीदने के लिए जाता है तो उसे ठोंक-पीटकर देखता है कि वह ठीक है या नहीं। तुम तो जीवन का मार्ग दिखाने वाला गुरु चाहते थे। इसलिए यदि गुरु को ठोंक-पीटकर देख लिया तो इसमें क्या हर्ज है? थोड़ी देर ठहरो। मैं यह झाड़ी फेंक लूँ, फिर बैठकर बातें करेंगे। ये झाड़ियाँ और इनके काँटे मार्ग चलने वालों को बहुत कष्ट देते हैं।"

यह है गुरु का गुण! परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि जिसे आप गुरु बनाना चाहते हैं, उसे पीटना शुरू कर दीजिये,। ऐसा नहीं, उसके पास बैठकर यह देखिए कि उसे क्रोध आता है या नहीं। यदि क्रोध नहीं आता तो गुरु योग्य है। उसे गुरु अवश्य बनाओ, परन्तु होश से बनाओ। देख भालकर बनाओ।

□□

Indian Institute of ...
ACC NO. 104328

देवता और असुर

देवताओं और असुरों की एक मनोरंजक कहानी आपको सुनाता हूँ। एक धनी सज्जन ने एक बार बहुत से विद्वानों को भोजन का निमंत्रण दिया। अतिथियों में देवता भी थे और असुर भी। सब अतिथि एकत्रित हुए तो असुरों ने गृहपति से कहा, "आप लोग सदा हमारे साथ अन्याय करते हैं, अब हम अन्याय सहन नहीं करेंगे।" गृहपति ने पूछा, "आपके साथ कौन-सा अन्याय होता है?"

असुर बोले, "विद्या में, ज्ञान में, विज्ञान में, शक्ति में, हर बात में हम देवताओं से आगे हैं। इतना होते हुए भी जहाँ-कहीं हम दोनों को बुलाया जाता है, वहाँ पहले देवताओं को भोजन मिलता है, बाद में हमको। यह अन्याय सहन करने योग्य नहीं है। आप देवताओं के साथ हमारा शास्त्रार्थ कराइये किसी भी विषय पर; यदि हम जीत जायँ, तो इस अन्याय को समाप्त कीजिये। अन्यथा हम इस अन्याय को चलने नहीं देंगे।"

गृहपति ने कहा, "आप क्रोध न कीजिये, पहले आप ही भोजन करेंगे, देवता पीछे खा लेंगे; परन्तु एक शर्त आपको माननी होगी।"

असुरों ने पूछा, "क्या शर्त है?"

गृहपति ने कहा, शर्त यह है कि आपके दोनों हाथों के साथ कोई तीन-तीन फीट की लकड़ियाँ बाँध दी जाएँगी। एक लकड़ी दायें हाथ के साथ, दूसरी बायें हाथ के साथ इसी स्थिति में आपको भोजन करना होगा।"

असुरों ने कहा, "ऐसे ही सही, हम खा लेंगे।" बाँध दी गई लकड़ियाँ। असुर लोग बैठ गये। सामने पत्तल रख दिये गये। उनमें भोजन परोसा जाने लगा। पूड़ी, कचौड़ी, हलवा, खीर, रसगुल्ले, गुलाब जामुन, गोभी, मटर, आलू, टमाटर सब रख दिये गये।

गृहपति ने कहा, "अब खाइये आप सब!"

असुरों ने खाने के लिए हाथ बढ़ाये, हाथों में लकड़ियाँ बँधी थीं। उन्होंने हाथ से पूड़ी उठायी कि मुँह में डालें; परन्तु वह मुँह में पहुँचने के बजाय सिर के पीछे जा गिरी। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु का बुरा हाल हुआ। आधा घण्टा तक असुर लोग प्रयत्न करते रहे, परन्तु एक भी ग्रास उनके मुँह में नहीं गया।

आध घण्टे के पश्चात् गृहपति ने कहा, "अब उठो असुरो! आपका समय हो गया। अब देवता भोजन करेंगे। असुर बेचारे भूखे ही उठ गये। स्थान को साफ किया गया। नई पत्तलें रखी गयीं। उनके पास देवताओं को बैठा दिया गया। उनसे भी कहा गया, "अब खाइये, देवताओ!"

देवताओं ने कहा, "हम खायेंगे अवश्य; परन्तु एक दूसरे के सामने बैठकर खायेंगे। हम आधे लोग इधर बैठेंगे, आधे उधर। उनके सामने उनकी पत्तलें और हम लोगों के सामने हमारी पत्तलें रख दीजिए।"

गृहपति ने ऐसा ही किया। देवता एक दूसरे के सामने बैठ गये। एक देवता ने अपने हाथों से सामने बैठे देवता की पत्तल से पूड़ी उठाई और उनके मुँह में डाल दी। सामने बैठे देवता ने पहले देवता के आगे रखी पत्तल से कचौड़ी उठाई, उसके मुँह में डाल दी। इस प्रकार सब देवताओं ने एक-दूसरे को भोजन खिला दिया,

पत्तल पर रखी भोजन की वस्तुएँ समाप्त कर दीं, सबका पेट भर गया।

यह है एक देवता और असुर में अन्तर! असुर केवल अपना पेट भरना चाहता है परन्तु भर नहीं पाता। देवता दूसरे को खिला कर प्रसन्न होता है। दूसरे को खिलाने से उसका अपना पेट भी भर जाता है।

देवता और असुर दोनों विद्वान् हैं, दोनों शक्तिशाली हैं, दोनों शास्त्र को जानने वाले हैं, परन्तु दोनों की वृत्ति अलग-अलग है। देवता दूसरे को सुखी करने का यत्न करता है, असुर अपने प्राणों की रक्षा के लिए दूसरों का गला काटकर खा जाता है। वृत्ति का अन्तर है दोनों में। यदि असुरों की वृत्ति अच्छी हो जाय, तो देवता और असुर दोनों में कोई भेद न रह जाय।

❑❑

निकम्मापन

दो व्यक्ति अफीम खाकर एक पेड़ के नीचे लेटे थे। वृक्ष था बेर का। शाखा से एक बेर गिरा। एक अफीमची की छाती पर आ पड़ा। परन्तु वह अफीमची ही क्या जो हाथ-पाँव हिलाये। रात भर बेर उसकी छाती पर पड़ा रहा और वह प्रतीक्षा करता रहा कि दूसरा अफीमची उठे और बेर को उसके मुँह में डाल दे; परन्तु दूसरा भी तो अफीमची था। वह भी रात भर लेटा रहा, उठा नहीं। प्रात: एक व्यक्ति उधर से निकला। उसने ध्यान से उन दोनों को देखा। पहले समझा, शायद मर गये हैं, हिलते-डुलते नहीं। शायद रात में किसी सर्प अथवा विषैले कीड़े ने काट लिया है और दोनों के प्राण-पखेरू उड़ गये हैं। परन्तु पास गया तो देखा कि दोनों की आँखें खुली हैं। दोनों टुकुर-टुकुर देख रहे हैं। आश्चर्य से उसने पूछा, ''तुम्हें क्या हुआ है?''

वह बेर वाले के पास खड़ा था। बेर वाले ने धीमी आवाज में कहा, ''यह बेर उठाकर मेरे मुँह में डाल दो।''

उस व्यक्ति ने बेर उठाया, उसके मुँह में डाल दिया, बोला, ''यह बेर क्या अभी गिरा है?''

अफीमची ने कहा, ''नहीं भाई! रात से पड़ा है!''

उस व्यक्ति ने आश्चर्य से कहा, ''रात से यह पड़ा है, तुम्हारे दोनों हाथ विद्यमान हैं, तुमने इसे उठाया क्यों नहीं? बहुत आलसी प्रतीत होते हो तुम?''

पास लेटा हुआ दूसरा अफीमची बोला, ''इसकी सुस्ती की मत पूछो बाबूजी। रात-भर कुत्ता मेरा मुँह चाटता रहा, और इससे यह भी नहीं हो सका कि उसे बाहर हटा दे।''

उस व्यक्ति ने आश्चर्य से कहा, ''तुम्हारे भी तो हाथ हैं।''

अफीमची बोला, ''परन्तु मैं तो लेटा था न? उठता कैसे?''

□□

आत्मा मुख्य है, शरीर नहीं

एक था घुड़सवार। पहुँच गया किसी गाँव में अपने एक मित्र के पास। मित्र ने उसे देखा तो अपने कमरे में ले गया। उसके घोड़े को बाहर बाँधा। यात्री को कमरे में बैठाकर बाहर से बन्द कर दिया और घोड़े के पास पहुँचकर उसे पानी पिलाया। घास और दाना खिलाया। तब उसे मालिश करने लगा। खुरैरा लेकर उसकी सेवा करने लगा उसकी टाँगें भी दबाने लगा कि बेचारा दूर से आया है, थक गया होगा। स्वयं वह व्यक्ति भाँग पीता था! निश्चित समय पर भाँग पीता और जुट जाता घोड़े की सेवा में। घोड़े को गर्मी न लगे, इसलिए उसको पंखे से हवा करता। उसका रंग खराब न हो इसलिए उसे खूब जोर से मल-मलकर नहलाता। वह दुर्बल न हो जाय, इसलिए उसे अच्छे से अच्छा खाना खिलाता। इस प्रकार तीन दिन हो गये। बेचारा यात्री कमरे में बन्द खिड़की से देखता की घोड़े की बहुत सेवा हो रही है, उसे खूब संवारा जा रहा है। यात्री आश्चर्य चकित था कि इस व्यक्ति को हो क्या गया है? अतिथि मैं हूँ, मित्र मैं हूँ, किन्तु मेरी परवाह न करके इस घोड़े की सेवा में अहर्निशि लगा हुआ है। तीन दिन व्यतीत हो गये तो एक साधु उधर से निकला। उसने उस व्यक्ति को घोड़े की सेवा करते देखा! बोला, ''खूब सेवा करते हो भाई! तुम्हारा घोड़ा है?'' उस व्यक्ति ने कहा, ''नहीं बाबा! मेरे मित्र का है।''

साधु ने पूछा, ''मित्र कहाँ है?'' उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, ''उसे मैंने कमरे में बन्द कर दिया है।'' साधु ने आश्चर्य से कहा,

"कमरे में बन्द कर दिया है? उसे कुछ खाने-पीने को नहीं दिया?" उसने कहा, "नहीं, मैं घोड़े की सेवा कर रहा हूँ।"

साधु ने कहा, "अरे पगले, क्या करता है? जिसका घोड़ा है उसका भी तो ख्याल कर। उसे तूने भूखा-प्यासा बैठा रखा है घोड़े को खुरैरा किये जाता है। खोल दरवाजा, उसे देख। शायद वह भूख प्यास से बेहोश हो गया होगा।"

उस व्यक्ति ने लापरवाही से उत्तर दिया, आप देखते नहीं, मैं घोड़े की सेवा कर रहा हूँ? मेरे मित्र का घोड़ा है, इसकी सेवा में दिन भर लगा रहता हूँ। दूसरा काम करने का मुझे अवकाश कहाँ है?"

आप कहेंगे, वह व्यक्ति भाँग पिये हुये था इसलिए उसने ऐसी बात कही। परन्तु हम क्या कर रहे हैं? हम भी तो उसी प्रकार का व्यवहार करते जा रहे हैं। घुड़सवार को हमने अंदर बन्द कर दिया है, उसकी चिन्ता नहीं, उसके खाने-पीने का ध्यान नहीं, बस घोड़े को खुरैरा किये जाते हैं। इसकी सेवा से ही हमें अवकाश नहीं मिलता। विचारपूर्वक देखिये, कितनी कंघियाँ आप इसके बालों को संवारने में तोड़ चुके हैं? साबुन की कितनी टिकियाँ आप खर्च कर चुके हैं? कितने टन तेल आप इसको मल चुके हैं? कितना अन्न इसे खिला चुके हैं? कितना पानी, कितना शर्बत, लस्सी और दूध इसको पिला चुके हैं? कितने फल इसके पेट में झोंक चुके हैं? प्रातः से सायं तक और सांयकाल से प्रातः तक कोई दूसरी चिन्ता नहीं इस घोड़े की सेवा हम किये जाते हैं और घुड़सवार अन्दर भूखा-प्यासा बैठा है। हम यह भी नहीं देखते कि वह होश में है या बेहोश हो गया है। यदि वह अपनी क्षीण-सी आवाज में पुकारता भी है तो हम उसकी आवाज नहीं

सुन पाते। कितना विडम्बनापूर्ण है। हम कहते हैं कि वह पागल है, उसने भाँग पी रक्खी थी, तो अपने आपको क्या कहेंगे?

मैं यह नहीं कहता कि इस शरीर की रक्षा न करो अवश्य करो मेरे भाई! इस घोड़े को पालो अवश्य। यह घृणा करने की वस्तु नहीं, पालने और संभालने की वस्तु है। इसे संभालकर रखो अवश्य। निर्बल न बना दो इसे इसकी ओर से लापरवाही न करो। यह सात ऋषियों की तपो भूमि है। यह देवताओं का यज्ञ-स्थान है। परन्तु केवल यह शरीर ही तो नहीं है। इसके भीतर बैठा हुआ आत्मा भी है। उसका भी ध्यान रखो।

❑❑

वास्तविक साथी

एक था युवक। नाम रामदास, जाति का गुसाई। एक गाँव में अपने पिता के साथ रहता था। पिता मन्दिर में पूजा करते थे। लोगों के घरों में मन्त्र आदि भी पढ़ते थे। बेटा रामदास उन्हें देखता, पूजा-पाठ में उसकी रुचि भी थी, परन्तु उस विद्या को प्राप्त न कर सका। एक दिन आया जब रामदास के पिता का देहान्त हो गया। माता पहले से ही चल बसी थीं। दूसरा कोई सम्बन्धी था नहीं। पिता की मृत्यु के बाद रामदास के लिए यह संसार सूना हो गया।

कभी उसने अपने पिता से भगवान का नाम सुना था। दुःखी अवस्था में उसने सोचा, "उसी भगवान से मिलूँगा जो सबका अपना है। परन्तु भगवान् से मिले कैसे? पाये कहाँ पर? यह तो उसे पता नहीं था। एक महात्मा के पास पहुँचा उनसे प्रार्थना की, कहा, "मुझे भगवान् का दर्शन करा दो, उससे मिला दो।" महात्मा बोले, "यह बहुत कठिन कार्य है, सरलता से होगा नहीं, इसके लिये बहुत परिश्रम करना होगा। रामदास ने कहा, "मैं करूँगा परिश्रम।" महात्मा बोले, बहुत अच्छी बात है। वह है कुटिया, उसमें बैठकर भगवान् का नाम लिया कर। भोजन तुझे मिल जावेगा। खाने और सोने से अवकाश मिलते ही जप किया कर। रामदास ने ऐसा करना प्रारम्भ किया। परन्तु प्रभु के लिए जो प्यार होना चाहिये, वह तो उसके पास नहीं था।

कुछ दिन वहाँ रहा, जप भी करता रहा। परन्तु जब कुछ हुआ नहीं तो उसने सोचा ये महात्मा तो मुझे ऐसे ही धोखा दे रहे

हैं। यह वस्तुतः कोई विधि नहीं। शायद भगवान् कुछ भी नहीं। इस प्रकार सोचकर एक दिन वह चुपके से उठा, कुटिया को छोड़कर अपने गाँव में आ गया। निराश होकर एक वृक्ष के नीचे बैठ गया। गाँव वाले कृपा करके खाना दे देते तो खा लेता, नहीं तो उस वृक्ष के नीचे ही बैठा रहता। उन्हीं दिनों उस गाँव के एक जमींदार ने अपनी इच्छा पूरी होने पर एक बकरी दान देने का निश्चय किया। परन्तु दान किसको दें, यह बात उनकी समझ में नहीं आ रही थी। गाँव वालों में से किसी ने सुझाव दिया, "अपना वह रामदास तो है, किसी महात्मा से शिक्षा लेकर भी आया है, उसी को यह बकरी दे दें।"

जमींदार ने रामदास को दान में बकरी दे दी। रामदास घास काटकर बकरी को खिलाता, नहलाता, उसका दूध पीता, उसे हर समय अपने साथ रखता। रात को उसके पास ही सो जाता। उसके जीवन में एक साथी की कमी थी, वह साथी उसे मिल गया। उसने बकरी का नाम ही साथी रख दिया। प्यार में वह उससे कहता, "आओ साथी, घास खाओ; आओ साथी, पानी पियो। आओ साथी, यहाँ छाया में बैठो, वहाँ धूप है।" बकरी को भी पता लग गया कि उसका नाम 'साथी' है। जब भी वह उसे साथी कहकर बुलाता, वह दौड़ी हुई उसके पास जाती। बकरी से उसे ऐसा प्यार हो गया कि उसके बिना वह एक क्षण भी नहीं रह सकता था। हर समय बकरी और रामदास एक साथ ही रहते। अब वह प्रसन्न था कि कोई अपना मिल गया। प्रसन्न था कि उसका साथी उसके पास है। परन्तु दैवयोग से एक दिन वह बकरी पता नहीं कहाँ खो गई। रामदास ने उसको साथी-साथी कहकर पुकारा। वह आई नहीं। पागलों की भाँति रामदास इधर से उधर और उधर से इधर दौड़ने

लगा। "साथी, ओ मेरे साथी" कहकर पुकारने लगा। प्रत्येक व्यक्ति से पूछने लगा, "तुमने मेरे साथी को देखा है? किसी ने पूछा, "कौन साथी? रामदास बोला, "मेरी बकरी। लाल रंग की है, इतनी-सी।" उस व्यक्ति ने कहा, "ऐसी एक बकरी गाँव के बाहर खेतों में भागी जाती मैंने देखी थी। रामदास "साथी-साथी" पुकारता हुआ बताये हुए स्थान की ओर भागा। वहाँ बकरी नहीं मिली तो दूसरे गांव की ओर भागा। दौड़ता जाता, पुकारता जाता, "साथी, ओ साथी, तुम कहाँ हो?" तभी मार्ग में वे महात्मा मिले, जिन्होंने उसे भगवान के नाम का जप करने के लिये कहा था। आश्चर्य से उन्होंने पूछा, "अरे रामदास! तुमको यह क्या हुआ? क्या अवस्था बना रखी है? किसको ढूँढता है?" रामदास ने रोते हुए कहा, "मेरा साथी खो गया है गुरूजी! मैं उसके बिना पागल होता जा रहा हूँ। मुझे कुछ नहीं सूझता। आपने कहीं मेरे साथी को देखा है?" महात्मा जी ने पूछा, "परन्तु तेरा साथी है कौन?" रामदास ने रोते हुए कहा, एक बकरी है! लाल रंग की बकरी।" महात्मा ने हँसते हुए कहा, अरे, तू बकरी को अपना साथी बना बैठा? रामदास के स्थान पर बकरी दास बन गया? अरे पागल तेरा वास्तविक साथी तो तेरे अन्दर है जो कभी तेरा साथ नहीं छोड़ता। जिस प्रकार तू बकरी के लिये बेचैन है, उसी प्रकार यदि उस सच्चे साथी के लिये बेचैन होता तो तेरे लिये कल्याण के द्वार खुल जाते।"

□□

महाचाण्डाल

गंगा के किनारे एक साधु अपनी कुटिया बनाकर रहते थे, एक दिन उन्होंने अपने कपड़े धोये। धूप अच्छी थी, वहाँ गंगा के किनारे रेत पर सूखने के लिए डाल दिये। तब स्वयं नहा-धोकर अपनी कुटिया में जाकर बैठ गये। तभी वहाँ एक चाण्डाल आया। उसे भी गर्मी लग रही थी। उसने सोचा, गंगाजी के शीतल जल में स्नान कर लूँ। स्नान करने के पश्चात् बाहर निकला तो सोचा-कपड़े मैले हो गए हैं, इन्हें भी धो लूँ। बस कपड़े धोने लगा। कपड़े धोने की आवाज कुटिया में पहुँची तो साधु ने सोचा कि कपड़े कौन धोता है? बाहर आकर देखा तो वहाँ एक चाण्डाल कपड़े धो रहा था। यह भी देखा कि उसके कपड़ों से उड़ने वाले छींटे साधु के सूखे हुए कपड़ों पर गिर रहे हैं। बस फिर क्या था, चढ़ गया क्रोध। दौड़ते हुए वह साधु चाण्डाल के पास पहुँचे और गालियाँ देते हुए बोले, "तू अंधा है चाण्डाल होकर यहाँ कपड़े धोता है? तेरे अपवित्र छींटों, ने मेरे कपड़ों को अपवित्र कर दिया।" आगे चढ़कर दो, तीन, चार चपत उन्होंने चाण्डाल के मुँह पर लगा दी। चाण्डाल हाथ जोड़े खड़ा रहा। साधु महाराज चिल्लाकर बोले, "फिर मत आना इस स्थान पर।"

साधु महाराज थे बूढ़े और दुर्बल, चाण्डाल था हृष्ट-पुष्ट। साधु बाबा थक गये, हाँफने लगे। गर्मी लगने तथा चाण्डाल के स्पर्श के कारण वे पुनः गंगा नहाने लगे।

चाण्डाल को भी मार पड़ने से पसीना आ गया था। वह भी

लगा। "साथी, ओ मेरे साथी" कहकर पुकारने लगा। प्रत्येक व्यक्ति से पूछने लगा, "तुमने मेरे साथी को देखा है? किसी ने पूछा, "कौन साथी? रामदास बोला, "मेरी बकरी। लाल रंग की है, इतनी-सी।" उस व्यक्ति ने कहा, "ऐसी एक बकरी गाँव के बाहर खेतों में भागी जाती मैंने देखी थी। रामदास "साथी-साथी" पुकारता हुआ बताये हुए स्थान की ओर भागा। वहाँ बकरी नहीं मिली तो दूसरे गांव की ओर भागा। दौड़ता जाता, पुकारता जाता, "साथी, ओ साथी, तुम कहाँ हो?" तभी मार्ग में वे महात्मा मिले, जिन्होंने उसे भगवान के नाम का जप करने के लिये कहा था। आश्चर्य से उन्होंने पूछा, "अरे रामदास! तुमको यह क्या हुआ? क्या अवस्था बना रखी है? किसको ढूँढता है?" रामदास ने रोते हुए कहा, "मेरा साथी खो गया है गुरूजी! मैं उसके बिना पागल होता जा रहा हूँ। मुझे कुछ नहीं सूझता। आपने कहीं मेरे साथी को देखा है?" महात्मा जी ने पूछा, "परन्तु तेरा साथी है कौन?" रामदास ने रोते हुए कहा, एक बकरी है! लाल रंग की बकरी।" महात्मा ने हँसते हुए कहा, अरे, तू बकरी को अपना साथी बना बैठा? रामदास के स्थान पर बकरी दास बन गया? अरे पागल तेरा वास्तविक साथी तो तेरे अन्दर है जो कभी तेरा साथ नहीं छोड़ता। जिस प्रकार तू बकरी के लिये बेचैन है, उसी प्रकार यदि उस सच्चे साथी के लिये बेचैन होता तो तेरे लिये कल्याण के द्वार खुल जाते।"

□□

महाचाण्डाल

गंगा के किनारे एक साधु अपनी कुटिया बनाकर रहते थे, एक दिन उन्होंने अपने कपड़े धोये। धूप अच्छी थी, वहाँ गंगा के किनारे रेत पर सूखने के लिए डाल दिये। तब स्वयं नहा-धोकर अपनी कुटिया में जाकर बैठ गये। तभी वहाँ एक चाण्डाल आया। उसे भी गर्मी लग रही थी। उसने सोचा, गंगाजी के शीतल जल में स्नान कर लूँ। स्नान करने के पश्चात् बाहर निकला तो सोचा-कपड़े मैले हो गए हैं, इन्हें भी धो लूँ। बस कपड़े धोने लगा। कपड़े धोने की आवाज कुटिया में पहुँची तो साधु ने सोचा कि कपड़े कौन धोता है? बाहर आकर देखा तो वहाँ एक चाण्डाल कपड़े धो रहा था। यह भी देखा कि उसके कपड़ों से उड़ने वाले छींटे साधु के सूखे हुए कपड़ों पर गिर रहे हैं। बस फिर क्या था, चढ़ गया क्रोध। दौड़ते हुए वह साधु चाण्डाल के पास पहुँचे और गालियाँ देते हुए बोले, "तू अंधा है चाण्डाल होकर यहाँ कपड़े धोता है? तेरे अपवित्र छींटों, ने मेरे कपड़ों को अपवित्र कर दिया।" आगे चढ़कर दो, तीन, चार चपत उन्होंने चाण्डाल के मुँह पर लगा दी। चाण्डाल हाथ जोड़े खड़ा रहा। साधु महाराज चिल्लाकर बोले, "फिर मत आना इस स्थान पर।"

साधु महाराज थे बूढ़े और दुर्बल, चाण्डाल था हृष्ट-पुष्ट। साधु बाबा थक गये, हाँफने लगे। गर्मी लगने तथा चाण्डाल के स्पर्श के कारण वे पुनः गंगा नहाने लगे।

चाण्डाल को भी मार पड़ने से पसीना आ गया था। वह भी

लगा। "साथी, ओ मेरे साथी" कहकर पुकारने लगा। प्रत्येक व्यक्ति से पूछने लगा, "तुमने मेरे साथी को देखा है? किसी ने पूछा, "कौन साथी? रामदास बोला, "मेरी बकरी। लाल रंग की है, इतनी-सी।" उस व्यक्ति ने कहा, "ऐसी एक बकरी गाँव के बाहर खेतों में भागी जाती मैंने देखी थी। रामदास "साथी-साथी" पुकारता हुआ बताये हुए स्थान की ओर भागा। वहाँ बकरी नहीं मिली तो दूसरे गांव की ओर भागा। दौड़ता जाता, पुकारता जाता, "साथी, ओ साथी, तुम कहाँ हो?" तभी मार्ग में वे महात्मा मिले, जिन्होंने उसे भगवान के नाम का जप करने के लिये कहा था। आश्चर्य से उन्होंने पूछा, "अरे रामदास! तुमको यह क्या हुआ? क्या अवस्था बना रखी है? किसको ढूँढता है?" रामदास ने रोते हुए कहा, "मेरा साथी खो गया है गुरूजी! मैं उसके बिना पागल होता जा रहा हूँ। मुझे कुछ नहीं सूझता। आपने कहीं मेरे साथी को देखा है?" महात्मा जी ने पूछा, "परन्तु तेरा साथी है कौन?" रामदास ने रोते हुए कहा, एक बकरी है! लाल रंग की बकरी।" महात्मा ने हँसते हुए कहा, अरे, तू बकरी को अपना साथी बना बैठा? रामदास के स्थान पर बकरी दास बन गया? अरे पागल तेरा वास्तविक साथी तो तेरे अन्दर है जो कभी तेरा साथ नहीं छोड़ता। जिस प्रकार तू बकरी के लिये बेचैन है, उसी प्रकार यदि उस सच्चे साथी के लिये बेचैन होता तो तेरे लिये कल्याण के द्वार खुल जाते।"

❑❑

महाचाण्डाल

गंगा के किनारे एक साधु अपनी कुटिया बनाकर रहते थे, एक दिन उन्होंने अपने कपड़े धोये। धूप अच्छी थी, वहाँ गंगा के किनारे रेत पर सूखने के लिए डाल दिये। तब स्वयं नहा-धोकर अपनी कुटिया में जाकर बैठ गये। तभी वहाँ एक चाण्डाल आया। उसे भी गर्मी लग रही थी। उसने सोचा, गंगाजी के शीतल जल में स्नान कर लूँ। स्नान करने के पश्चात् बाहर निकला तो सोचा-कपड़े मैले हो गए हैं, इन्हें भी धो लूँ। बस कपड़े धोने लगा। कपड़े धोने की आवाज कुटिया में पहुँची तो साधु ने सोचा कि कपड़े कौन धोता है? बाहर आकर देखा तो वहाँ एक चाण्डाल कपड़े धो रहा था। यह भी देखा कि उसके कपड़ों से उड़ने वाले छींटे साधु के सूखे हुए कपड़ों पर गिर रहे हैं। बस फिर क्या था, चढ़ गया क्रोध। दौड़ते हुए वह साधु चाण्डाल के पास पहुँचे और गालियाँ देते हुए बोले, "तू अंधा है चाण्डाल होकर यहाँ कपड़े धोता है? तेरे अपवित्र छींटों, ने मेरे कपड़ों को अपवित्र कर दिया।" आगे चढ़कर दो, तीन, चार चपत उन्होंने चाण्डाल के मुँह पर लगा दी। चाण्डाल हाथ जोड़े खड़ा रहा। साधु महाराज चिल्लाकर बोले, "फिर मत आना इस स्थान पर।"

साधु महाराज थे बूढ़े और दुर्बल, चाण्डाल था हृष्ट-पुष्ट। साधु बाबा थक गये, हाँफने लगे। गर्मी लगने तथा चाण्डाल के स्पर्श के कारण वे पुन: गंगा नहाने लगे।

चाण्डाल को भी मार पड़ने से पसीना आ गया था। वह भी

गंगा में कूद पड़ा। साधु बाबा ने चिल्लाकर कहा, "अभी तो पसीने से तर हो रहा है, एकदम गंगा में कूद पड़ा सर्द-गर्म हो गया तो मरेगा। और फिर तू तो नहा चुका था, अब क्यों नहाता है?"

चाण्डाल बोला, "महाराज, आप भी तो नहा चुके थे आप क्यों नहाते हैं?"

साधु ने कहा, "मुझे चाण्डाल ने छू लिया है इसलिए नहाता हूँ।"

चाण्डाल बोला, "और मुझे महाचाण्डाल ने, आपके क्रोध ने छू लिया है इसलिए नहाता हूँ।"

वस्तुत: यह क्रोध महाचाण्डाल है। सब कुछ बिगाड़ देता है। जहाँ उत्पन्न हो जाये वहाँ सर्वनाश कर देता है, कुछ भी शेष नहीं रहने देता। अस्तु चित्त को प्रसन्न, निर्मल बनाने का पहला साधन यह है कि क्रोध को अपने निकट मत आने दो।

विषयासक्त इंद्रियाँ

एक नगर में एक बाबू रहता था, उसके दो औरतें थीं। वे दोनों ही बड़ी बलिष्ठ एवं लड़ाकू थीं। ईर्ष्या द्वेषवश आपस में झगड़ा टंटा किया करती थीं बाबू दिनभर ऑफिस में काम करता। कभी-कभी ज्यादा काम होने के कारण वह सायं बड़ी देर से घर पहुँचता था। इन औरतों को समझाते-समझाते वह तंग हो गया था। किसी भी प्रकार वह शान्ति से नहीं रहतीं थीं। एक दिन वह बड़ी देर से घर पहुँचा। वहाँ उसने देखा कि दोनों का अखाड़ा खूब जमा हुआ है, एक दूसरे को मुँहफट गालियाँ दे रही हैं एक औरत ऊपर रहती थी और एक नीचे। जब बाबू सीढ़ी द्वारा ऊपर जाने लगा तो नीचे वाली औरत ने उसका पैर पकड़ लिया और गर्जना के साथ ताना देती हुई बोली-''तू ऊपर क्यों जाता है? इस घर में प्रथम मैं आई हूँ, इसलिए मैं तेरे को कभी ऊपर राँड़ के पास नहीं जाने दूँगी। चाहे कुछ भी हो जाये।'' जब ऊपर वाली औरत को मालूम हुआ कि नीचे वाली मेरी सौत-उसे ऊपर नहीं आने देती है, तब उसने सौत को गालियाँ देते हुए उसके हाथ को ऊपर पकड़ लिया और कहने लगी कि छोड़ इसके पैर को राँड़! ऊपर आने दे यह नीचे तेरे यहाँ नहीं रहेगा, तेरे फंदे से छूटने के लिए ही तो वह मुझे इस घर में लाया है।

बाबू शुरू से ही दुर्बल था, घर की लड़ाई से और भी ज्यादा दुर्बल हो गया था। उस दिन ऑफिस में लगातार कई घण्टे काम करते-करते बहुत ही थका मांदा था। भूखा-प्यासा तो था ही। इसलिए उसमें पैर या हाथ छुड़ाने की ताकत न थी। दोनों को

अनुनय-विनय के साथ समझाता था, परन्तु दोनों ने ही हठ पकड़ ली थी। एक कहती थी कि मैं नहीं मानूँगी, पैर कभी नहीं छोड़ूँगी, तू अपनी ऊपरवाली को मना। ऊपरवाली कहती थी-चाहे कुछ भी हो जाये मैं न तो इसका हाथ ही छोड़ूँगी, न नीचे ही रहने दूँगी। इसको ऊपर लेकर ही छोड़ूँगी!

इस प्रकार सारी रात्रि खींचा तानी का घमासान युद्ध चलता रहा। बाबू रोता रहा परन्तु उन निर्दयी औरतों को उसके रोने एवं कष्ट की कुछ भी परवाह नहीं थी। वे अपना-अपना हठ पूरा करने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ थीं। आसपास के पड़ोसी सब खा-पीकर सो गये थे, इसलिए वे भी छुड़ाने के लिये नहीं पहुँच सके। प्रातःकाल हुआ, पड़ोसी जब जागे और इस बेचारे बाबू की पुकार सुनी, तब उन्होंने वहाँ पहुँचकर दोनों औरतों को धमका-फटकार कर बड़ी मुश्किल से उसको छुड़ाया। दैवयोग से उसके घर में उसी रात्रि को चोरी करने के लिए एक चोर भी आया हुआ था। वह घर के एक अंधेरे कोने में छिपा हुआ, यह तमाशा देख रहा था। वह प्रतीक्षा कर रहा था कि कब यह मामला समाप्त हो और मैं अपना काम करूँ। परन्तु चोर के दुर्भाग्य से खींचातानी का मामला जल्दी समाप्त नहीं हुआ, रात्रि पर्यन्त चलता रहा। और वह अपना काम न कर सका। प्रातः पड़ोसियों ने उसको भी कोने में छिपा हुआ देखा और पकड़ लिया और चोर को पुलिस के हवाले कर दिया। जब थानेदार ने उससे पूछा तो उसने रात्रि की सारी कथा सच-सच बतला दी और कहा कि मैं चोरी करने गया था परन्तु रात्रि के उस कलह के कारण ही चोरी न कर सका। उसने हँसते हुए थानेदार साहब से कहा कि साहब! मेरे इस अपराध का आप जो भी दण्ड देंगे, उसको मैं सहर्ष भोग लूँगा,

परन्तु आप उस बाबू का दण्ड मुझे न दें। दो औरतों का आदमी मुझे मत बनायें। चोरी की बात सुनकर थानेदार भी ठहाका मारकर हँस पड़ा।

इस दृष्टान्त का तात्पर्य यह है कि ये विषयासक्त-इंद्रियाँ भी उन झगड़ालू औरतों के समान हैं, और ये अपने स्वामी जीवात्मा को अनेक प्रकार के कष्ट देतीं रहती हैं। विषयों का मोह ही कष्ट का कारण है। मोहित-इन्द्रियाँ दु:ख देती हैं। इसलिए जिसे दु:ख तथा निवृत्ति की तथा शाश्वत-सुख की अभिलाषा है, वह विवेक वैराग्य द्वारा अपनी इन्द्रियों को विषयों के मोह से मुक्त करे।

□□

निकृष्ट भावनाओं से उत्साह हीनता

कुरूक्षेत्र के मैदान में आमने-सामने कर्ण एवं अर्जुन रथारूढ़ होकर युद्ध कर रहे थे। अर्जुन के सारथी भगवान् श्रीकृष्ण थे। वे अर्जुन में उत्कृष्ट-भावनाएँ भर रहे थे। वे कहते थे-हे अर्जुन! तुम इन्द्र पुत्र हो, तुम बड़े वीर हो, तुम विशुद्ध क्षत्रिय राजकुमार हो, तुम्हारा मुकाबला करने के लिये कोई भी समर्थ नहीं है, ''पार्थ एवं धनुर्धर,'' ऐसी अनुश्रुति समग्र विश्व में फैले हुए तुम्हारे यश-सौरभ को विकीर्ण करतीं हैं। और की तो क्या बात? साक्षात काल को भी परास्त कर सकते हो। तुम विश्वविजयी हो, महान् हो, तुम्हारे समक्ष यह बेचारा कर्ण क्या चीज है; जैसे सिंह के सामने गीदड़ , जैसे सूर्य के सामने जुगनू। तुम इसे अभी कुछ ही क्षणों में पराजित कर दोगे। तुझमें अपार-शक्ति है। इधर कर्ण का सारथी राजा शल्य था। वह भीष्म के समान कौरव-पक्ष में रहने पर भी हृदय से धार्मिक, सदाचारी एवं भगवान् भक्त पाण्डवों की ही विजय चाहता था। इसलिए वह कर्ण का सारथी भी नहीं बनना चाहता था। किन्तु दुर्योधन ने जब बहुत ही अनुनय-विनय की तब शल्य ने एक शर्त के साथ कर्ण का सारथी बनना स्वीकार किया। शल्य ने कहा मैं जो भी अच्छा या बुरा कहूँ, वह सब कर्ण को चुपचाप सुनना होगा, यदि वह मेरी बातों का किंचित प्रतिकार करेगा, तो उसी समय मैं उसके सारथ्य-पद से अलग हो जाऊँगा। हाँ, उसका सारथ्य-वफादारी के साथ करता रहूँगा, परन्तु मेरे कैसे भी वचन हों, वे सब उसको सुनने ही होंगे। कर्ण ने शल्य-राजा की इस शर्त को स्वीकार किया। कर्ण ने सोचा-भले ही वह कुछ भी बकवाद करता रहे, उससे अपने को क्या मतलब? समरांगण में मेरे रथ का संचालन बराबर होना चाहिए।यह तो प्रामाणिक ढंग से राजा शल्य करेगा ही।

कर्ण में सूर्य की सी तेजस्विता थी। सत्य यह है कि यह पाण्डवों का ज्येष्ठ भ्राता एवं सूर्य के सान्निध्य से उत्पन्न कुन्ती पुत्र था। परन्तु कन्यावस्था में उत्पन्न होने के कारण लोकापवाद के भय से माता-कुन्ती ने उसका त्याग कर दिया था। राधा नाम की दासी ने बालक-कर्ण को पाल-पोसकर बड़ा किया इसी से वह दासी-पुत्र एवं हीन-जाति का सूत-पुत्र कहलाया। तथापि वह अर्जुन की अपेक्षा विशेष-बलशाली एवं धनुर्विद्या में अधिक प्रवीण था। युद्ध के समय राजा शल्य, कर्ण के मानस-भवन में निकृष्ट-भावनाएँ भरने लगे। वह कहते थे कि-अरे कर्ण! तुम दासी पुत्र हो, हीनवर्ण के हो, तुम उस क्षत्रिय-राजकुमार-अर्जुन का मुकाबला कैसे कर सकते हो? क्या गीदड़ कभी वनराज-सिंह का मुकाबला कर सकता है? तुम्हारा बल अर्जुन के महान बल के समक्ष नगण्य है, तुच्छ है। इसलिए तुम उस पर किसी भी प्रकार से विजय प्राप्त कर ही नहीं सकते। उस धीर-वीर अर्जुन का एक अन्वर्थ नाम विजय है। उसकी कभी पराजय होती ही नहीं, विजय ही होती है। उसने साक्षात् कैलाशपति-भगवान् शंकर का मुकाबला किया था और अपने अतुल सामर्थ्य का प्रदर्शन कर पशुपति-भोलेनाथ को प्रसन्न कर लिया था। भगवान् से उसने अनेक आशीर्वाद, वरदान एवं अजेय-दिव्य-शस्त्रादि प्राप्त किये थे। उस प्रचुर-शौर्य-निधि के द्वारा तुम इस प्रकार नष्ट हो जाओगे जिस प्रकार दीप की ज्वाला में पड़कर पतंग नष्ट हो जाता है। इस प्रकार के वचन सुनकर कर्ण के हृदय में निकृष्ट-भावनाएँ भर जाती थीं। मन का उत्साह नष्ट हो जाता था। उत्साह का न रहना ही एक प्रकार की मनोवैज्ञानिक-पराजय मानी जाती है। उधर अर्जुन उत्कृष्ट-भावनाओं के द्वारा प्रोत्साहित हो रहे थे इधर कर्ण निकृष्ट-भावनाओं के द्वारा हतोत्साहित होकर हीन बनते जा रहे थे। अन्त में अर्जुन ने ही कर्ण को परास्त किया और वह विजयी हुए।

राजा भोज एवं कवि कालिदास

भारतीय-इतिहास में राजा भोज एवं कवि-कालिदास का एक महत्वपूर्ण स्थान है। राजा भोज संस्कृत के अच्छे विद्वान थे, अतएव उनके दरबार में कालिदास, दण्डी, भारवि आदि बड़े-बड़े प्रतिभावान विद्वान रहते थे। एक समय राजा भोज के मन में यह जिज्ञासा हुई कि मेरी सभा में नवरत्नों में से श्रेष्ठ विद्वान-कविरत्न कौन है? यह तो मानी हुई बात है कि संसार में सब एक से नहीं होते। छोटे-बड़े हुआ करते हैं, किसी की किसी विषय में योग्यता एवं प्रौढ़ता होती है, तो किसी की अन्य किसी विषय में। राजा ने यह जिज्ञासा अपनी सभा में प्रकट की। एक मंत्र-शास्त्र वेत्ता ने सम्मति दी कि इसका निर्णय भगवती श्रीसरस्वती जी के मुख से ही होना चाहिये। नवरात्रि का शुभ-समय समीप ही आ रहा था, इसलिए उसने राजा भोज से कहा कि उस समय विधिपूर्वक कुँभ स्थापन कर मातेश्वरी भगवती-श्रीशारदा से ही इस विषय का प्रश्न करना चाहिए। वे ही कृपया कविश्रेष्ठ का नाम बतला देंगी।

सभी नवरत्नों को अपनी-अपनी विद्वता एवं नैपुण्य पर पूर्ण विश्वास था। कालिदास ने विचार किया कि सरस्वती तो मेरी माता हैं, उनकी दिव्य-कृपा से ही तो मैं गँवार से विद्वान-कविराज बना हूँ। ''जिह्वाऽग्रे मे सरस्वती'' अर्थात् माता ने मुझे वरदान दिया है कि वह सूक्ष्म रूप से मेरी जिह्वा पर सदा अवस्थित रहेंगी इसलिए माता मुझे ही कवि श्रेष्ठ कहेंगी।

राजा भोज ने घट स्थापन कर पूजा एवं स्तुति करने के पश्चात् भगवती से वही प्रश्न किया। स्थापित-कलश से तीन

बार ''कविर्दण्डी, कविर्दण्डी, कविर्दण्डी,'' ऐसी ध्वनि निकली माता शारदा ने दण्डी कवि को ही श्रेष्ठ कहा। इससे कालिदास बहुत दु:खी हुये। जिस प्रकार बालक माता से रूठ जाता है, उसी प्रकार कालिदास माता सरस्वती से रूठ गये। यहाँ तक कि-वे भोजनादि भी करना छोड़ बैठे। माता सरस्वती ने प्रकट होकर कालिदास से पूछा कि तू इतना दु:खी क्यों है? भोजनादि भी क्यों नहीं करता? किन्तु कालिदास कुछ न बोले। फिर भी भगवती अपना वात्सल्य-भाव प्रकट कर कालिदास को मनाने लगीं। कालिदास आक्रोश पूर्वक माता से कहने लगे ''तूने मेरी इज्जत खराब कर दी, तेरे कथन से भरी सभा में मेरा घोर अपमान हो गया। लोगों के सामने अब मैं सिर उठाकर बोलने लायक नहीं रहा।'' तब भगवती ने कालिदास से कहा कि तुम सभी लोग मेरा तात्पर्य नहीं समझ सके। दण्डी श्रेष्ठ कवि हैं, परन्तु तुम तो पुत्र होने के कारण मेरी आत्मा ही हो। तुम मेरा अभिन्न स्वरूप हो, इसलिए मैंने तेरी श्रेष्ठता की घोषणा नहीं की। यदि मैं तुझे श्रेष्ठ कहती, तो तेरे प्रति जो मेरा आत्मभाव है, वह सिद्ध नहीं होता। दण्डी, कवि-श्रेष्ठ हो सकता है, परन्तु उससे भी बढ़कर वह मेरी आत्मा नहीं हो सकता। और आत्मा से बढ़कर निरवधिक-प्रीति के दर्शन के लिए अन्य कोई भी उपमा नहीं मिल सकती। आत्मा ही एक मात्र निरवधिक-प्रीति का आस्पद होता है। आत्मावत केवल तू है दण्डी नहीं।

भगवती सरस्वती द्वारा इस प्रकार सुनकर कालिदास बहुत ही प्रसन्न हुए, माता के श्रीचरणों में बारम्बार प्रणाम एवं क्षमा-प्रार्थना करने लगे। कालिदास ने कहा कि सभा में भी आपको ऐसा ही रहस्य प्रकट करना होगा, जिससे मेरा सलज्जमुख लोगों के सम्मुख

हर्षोद्रिक से समुन्नत बन सके। मेरा गौरव सबके समझ में आ जाय। माता ने स्वीकार किया। पुनः सभा में राजा भोज द्वारा कुंभ स्थापित किया गया और भगवती से प्रश्न किया कि यह कालिदास कैसा है? कुंभ से भगवती की आवाज आयी कि यह कालिदास मेरी आत्मा है, जो सामर्थ्य मुझमें है, वही इसमें भी है। इस प्रकार ''आत्मा'' शब्द के प्रयोग से भगवती-वाग्देवी ने कवि कालिदास का अनुपमेय-गौरव सभा के समक्ष सिद्ध कर दिया।

❑❑

शिव-भक्त उपमन्यु

शिव-भक्त उपमन्यु, महिष-व्याघ्रपाद का पुत्र था। उसकी भी गणना अर्थार्थी-भक्तों में की जाती है। एक दिन उपमन्यु ने माता से दूध माँगा। घर में दूध न होने के कारण माता ने चावलों का आटा जल में घोलकर उपमन्यु को पीने के लिए दिया। उपमन्यु अपने मामा के घर असली दूध पी चुका था। इसलिए इस नकली दूध को तुरन्त पहचान गया और माता से बोला, माँ! यह तो दूध नहीं है। ऋषि-पत्नी झूठ बोलना नहीं जानती थीं। उन्होंने कहा-बेटा! तू सत्य कहता यह दूध नहीं है। हम तपस्वी एवं पर्वतों की गुफाओं में जीवन बिताने वाले अकिंचन हैं, इसलिए अपने यहाँ असली दूध कहाँ से मिल सकता? हमारे तो परमाराध्य-सर्वस्व-भगवान् श्री शंकर हैं, यदि तू अच्छा दूध पीना चाहता है, तो उन आशुतोष कैलाशपति भगवान महादेव को प्रसन्न कर, उनकी प्रेम से आराधना कर। उनके प्रसन्न हो जाने पर दूध क्या दूध का समुद्र प्राप्त हो सकता है।

माता की बात सुनकर बालक उपमन्यु ने पूछा-माँ! भगवान् महादेव कौन हैं? कहाँ रहते हैं? उनका कैसा स्वरूप है? मुझे वे किस प्रकार मिलेंगे? और उन्हें प्रसन्न करने का क्या उपाय है?

बालक के ये वचन सुनकर स्नेहवश माता की आँखों में आँसू भर आये। माता ने उसे शिव-तत्व समझाया और कहा-तू उनका भक्त बन, उन्हीं को नमस्कार कर, उनकी शरण में जा, उन पर विश्वास रख उनमें मन लगा, उनके दिव्य साकार-स्वरूप का ध्यान कर। उनको प्रसन्न करने का वैदिक महामंत्र है-''ॐ नमः शिवाय'' इस मंत्र का निरंतर एकाग्रता एवं श्रद्धा से जप कर। इस

प्रकार श्रद्धापूर्वक जप करने पर वे कल्याणस्वरूप भगवान् शिव तेरा निश्चय ही कल्याण करेंगे। तेरे सभी मनोरथ पूर्ण करेंगे।

अपनी माता द्वारा इस प्रकार उपदेश प्राप्त कर बालक उपमन्यु भगवान् शिव को प्रसन्न करने का दृढ़-संकल्प कर घर से निकल पड़ा। वन में जा कर प्रतिदिन वह "ॐ नमः शिवाय" महामंत्र का अखंड जप करने लगा। पत्र-पुष्पों से भगवान् महादेव की पूजा करता हुआ कठोर तप करने लगा। भगवान् श्री शंकर के ध्यान में वह तन्मय हो गया। उसकी श्रद्धा-भक्ति एवं आराधना से भगवान शिव उसके अनन्यभाव की परीक्षा लेने की इच्छा से देवराज इन्द्र का रूप धारण कर ऐरावत हाथी पर आरूढ़ हो उपमन्यु के समक्ष प्रकट हुए। ऋषिकुमार-उपमन्यु ने इन्द्र को देखकर प्रणाम किया और कहा-देवराज! आपने मेरे समीप पधारकर मुझ पर बड़ी कृपा की है। बतलाइये, मैं आप की क्या सेवा करूँ? इन्द्ररूप धारण किये हुए भगवान शंकर ने कहा-हे सुव्रत! मैं तुम्हारी इस तपस्या से बहुत प्रसन्न हूँ, तुम मुझसे मनोवांछित वर माँगो। तुम जो कुछ माँगोगे, वही मैं तुम्हें दूँगा।

इन्द्र की बात सुनकर उपमन्यु ने कहा-देवराज! आपकी बड़ी कृपा है, परन्तु मैं आपसे कुछ भी नहीं लेना चाहता। मैं तो भगवान् विश्वनाथ-श्री शिव जी का अनन्य भक्त-सेवक बनना चाहता हूँ। जब तक वे मुझ पर प्रसन्न होकर दर्शन नहीं देंगे, तब तक मैं आराधना करता रहूँगा। जन्म-जन्मान्तरों में भी भगवान् शंकर में ही मेरी अक्षय एवं अनन्य-भक्ति बनी रहे, यही मेरी अभिलाषा है। भगवान् शिव ही कृपा कर जो भी कुछ मेरा अभिप्रेत वर देंगे, उसको मैं सहर्ष स्वीकार करूँगा। परन्तु अन्य किसी से मैं कुछ नहीं लेना चाहूँगा। इन्द्र से इस प्रकार कहकर उपमन्यु फिर अपनी तपस्या में लग गया। तब इन्द्ररूपधारी भगवान् शंकर ने उपमन्यु के समक्ष देवराज इन्द्र के गुणों की प्रशंसा द्वारा

अपनी ही निन्दा करना प्रारम्भ किया। उपमन्यु शिव निन्दा सुनकर बहुत दुःखी हुआ। कभी क्रोध न करने वाले उसके मन में क्रोध का संचार हो गया और उसने शिवनिन्दक इन्द्र का वध करने की इच्छा से अघोरास्त्र से अभिमन्त्रित भस्म लेकर इन्द्र पर फेंकी। तद्नन्तर शिव निन्दा सुनने के प्रायश्चित स्वरूप अपने शरीर को भस्म का प्रयोग करने के लिए "आग्नेयी धारणा" का प्रयोग करने लगा।

उसकी ऐसी अनन्यता देखकर भगवान्-शंकर परम प्रसन्न हो गये। भगवान् के आदेश से "आग्नेयी-धारणा" का निवारण हो गया और नन्दी ने अघोरास्त्र का निवारण कर दिया। इतने में ही भक्त-उपमन्यु ने आश्चर्य चकित होकर देखा कि ऐरावत-हाथी चन्द्रमा के समान सफेद कान्तिवाला वृषभ बन गया है और इन्द्र की जगह भगवान् कैलाशपति शंकर अपने दिव्यरूप में जगज्जननी भगवती उमादेवी के साथ उस पर बिराजमान हैं। वे करोड़ों सूर्य के समान तेज से आच्छादित और करोड़ों चन्द्रमा के समान सुशीतल सुधामयी किरणमालाओं से घिरे हुए हैं। उनके प्रकृष्ट शीतल तेज से सब दिशाएँ प्रकाशित एवं प्रफुल्लित हो गयीं। उनका कर्पूर के समान दिव्य गौरवर्ण था। धवल-बालचन्द्र से सुशोभित जटा मुकुट था। दिव्य सुन्दर शरीर पर सुवर्ण-कमलों से गुंथी हुई और रत्नों से जुड़ी हुई माला सुशोभित हो रही थी। जगदम्बिका भगवती उमा का भी सौन्दर्य अवर्णनीय था। विश्ववन्दित भगवान् शंकर का भगवती उमा सहित दर्शन प्राप्त कर उपमन्यु के हर्ष का आर पार नहीं रहा। वह गदगद कण्ठ से भगवान् की प्रार्थना करने लगा। उसकी प्रार्थना का शिवस्तोत्र शिवभक्तों में बड़ा प्रसिद्ध है।

□□

जिज्ञासु राजा जनक

किसी समय महर्षि अत्रि ने राजा जनक की मिथिलापुरी में चातुर्मास किया था। इस नगर के बाहर उपवन में शिष्यों के साथ महर्षि रहा करते थे। राजा जनक श्रद्धा एवं उदारता पूर्वक उनकी सेवा करते तथा उनके प्रवचनों में भी प्रतिदिन सम्मिलित होते। राजा जनक सच्चे जिज्ञासु भक्त थे, इसलिए महर्षि अत्रि को विशेष रूप से उन्हें ही ब्रह्मप्रवचन सुनाने की अभिरुचि थी। कभी-कभी राज्य कार्य में विलम्ब हो जाता उस समय अत्रि राजा जनक की बराबर प्रतीक्षा कर उनके आने पर ही अपना प्रवचन आरम्भ करते थे। ऐसा देखकर कुछ लोगों के मन में महर्षि के प्रति अश्रद्धा के भाव भी प्रकट हुए। ये समदर्शी ब्रह्मवेत्ता ऋषि, राजाजनक का इतना पक्षपात क्यों करते हैं? राजा जनक समृद्ध एवं ऐश्वर्यशाली हैं, इसलिए उनसे कुछ विशेष ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए ही ऋषि उनका पक्षपात करते होंगे--इस प्रकार की बातें अन्य लोगों के मन में आने लगीं। सर्वज्ञ ऋषि ने लोगों के आरोपित भावों को समझ लिया। अत: लोगों को यथार्थ बात समझाने के लिए ही महर्षि ने अपनी योगशक्ति का एक दिन विलक्षण प्रयोग किया।

श्रावणी अमावस्या सोमवार का पुनीत पर्व था, उस दिन प्रवचन सुनने के लिए लोग अधिक संख्या में आये हुए थे। "सर्व खल्मिदं ब्रह्म" "अतोऽन्यदार्तम्" "अयमात्मा ब्रह्म" इन श्रुति वचनों का प्रवचन चल रहा था। राजा जनक बड़ी श्रद्धा एवं एकाग्रता से सुन रहे थे। प्रवचन आधा हुआ होगा, तभी महर्षि की

योग-शक्ति ने श्रोताओं को मिथिला नगरी के एक भाग में मिथ्या-अग्नि काण्ड का भान करा दिया। उन्होंने देखा कि नगर के उत्तर में बड़े जोरों से आग लग गयी है। मकान फटाफट जल रहे हैं। अग्नि देखते ही उत्तर दिशा की तरफ रहने वाले लोग सहसा प्रवचन छोड़ भाग खड़े हुए। शनैः-शनैः अग्नि बढ़ती ही गई और समस्त नगर में फैल गई। लोग घबराकर नगर की तरफ भागने लगे। परन्तु महर्षि अत्रि का प्रवचन बन्द नहीं हुआ। वे और भी गहनता से ब्रह्म-तत्व का विवेचन करने लगे। कुछ लोग हाथों का इशारा कर स्पष्ट रूप से कहने लगे कि अरे बाबा! यह सारा नगर जल रहा है? अब भी तो आप ब्रह्म-ब्रह्म बोलना छोड़ दें। परन्तु अत्रि मुनि पर इसका किंचित प्रभाव नहीं पड़ा। वे तन्मयता पूर्वक सुना रहे थे और राजा जनक भी तन्मयता पूर्वक सुन रहे थे। राजा जनक उन भागने वाले लोगों का कोलाहल सुन कर भी अनसुनी कर देते थे और स्थिर-चित्त से वे प्रवचन सुनते रहे। न वे हिले डुले; न इधर-उधर देखा ही।

इधर उन साधुओं की झोपड़ियों में भी आग की लपटें दीख पड़ीं, गृह-त्यागी साधु लोग भी प्रवचन छोड़ उधर दौड़ पड़े। कोई कहता अरे! झोपड़ी में मेरा बढ़िया कमण्डल रह गया, कोई कहता--मेरी पुस्तकें वहाँ रखी हुई हैं। कोई साधु पुकारता--वहाँ मेरी लंगोटी है। आग से बचाने के लिए सभी दौड़ो-दौड़ो कहने लगे। प्रवचन स्थल में इने-गिने दो-चार गृहस्थ एवं एक दो साधु ही रह गये। वहाँ पहुँचने पर लोगों ने देखा कि अग्नि गायब, नगरी ज्यों की त्यों है। झोपड़ियाँ भी सुरक्षित हैं। अग्नि का वहाँ नामोनिशान भी नहीं। सबको बड़ा विस्मय हुआ। मृगतृष्णा के जल की भाँति अग्नि दूर से प्रतीत हुई, परन्तु समीप जाने पर

उसका विलोप हो गया। सब वापस लौटकर प्रवचन स्थल पर आये। महर्षि अत्रि ने सबको सम्बोधित करते हुए कहा--तुम अपने को देखो और राजा जनक को देखो। कौन सच्चा ब्रह्म-जिज्ञासु है। तुम्हारा तो केवल एक-एक मकान जल रहा था, परन्तु राजा जनक का समग्र जल रहा था, तो भी ये इतना शान्त, एवं प्रसन्न ही बने रहे, तन्मयता के साथ ब्रह्मप्रवचन सुनते रहे। इसीलिए मैं राजा जनक का पक्षपात करता हूँ और स्पष्ट रूप से कहता हूँ कि राजा जनक ही सच्चे जिज्ञासु-भक्त हैं।

❑❑

स्वर्ण की बेड़ी भी बंधन कारक

एक समय राजा भरत महानदी गण्डकी (नारायणी) में स्नान कर, उसके तट पर एकान्त अरण्य में बैठकर 'ऊँकार' का जप कर रहे थे। उसी समय एक अकेली हरिणी प्यास से व्याकुल हो, जल पीने के लिए उनके सामने ही किनारे पर आई। जब वह जल पीने लगी तभी पास ही एक सिंह की अति भयंकर गर्जना हुई। उसको सुनते ही हरिणी सिंह के भय से और भी व्याकुल हो उठी। उसके नेत्र कातर हो गये और वह अत्यन्त भयभीत हो, प्यास दूर होने से पूर्व ही सहसा नदी के दूसरी ओर उछली। हरिणी गर्भिणी थी। जब वह उछलने लगी तो अत्यन्त भय के कारण, उसका गर्भस्थ बच्चा योनिद्वार से निकल कर नदी के प्रवाह में गिर गया। एक तो वह अपने झुण्ड से बिछुड़ी हुई थी, फिर गर्भस्राव। उछलने और सिंह के भय से व्याकुल होकर वह बहुत ही थक गई थी। अतः वह कूदकर पर्वत की गुफा में गिरी, और गिरते ही मर गई।

राजर्षि भरत ने देखा कि यह दीन सद्योजात मृग का बच्चा अपने माता-पिता आदि से बिछुड़कर नदी के प्रवाह में बहा जा रहा है, तो वे करुणावश उस मातृहीन बच्चे को अपने आश्रम में ले आये। भरत जी को उस मृग छौने से धीरे-धीरे स्नेह होने लगा। अतएव वे नित्यप्रति उसके खाने-पीने का प्रबन्ध करने, व्याघ्रादि से रक्षा करने, लाड़लडाने पुचकारने आदि में व्यस्त रहने लगे। इससे भगवान् की पूजा, स्मरण, ध्यान आदि दिनों-दिन एक-एक करके छूटते-छूटते अंत में सभी छूट गये। मोहवश वे सोचते रहते थे कि--इस बिचारे दीन मृग बालक को कालचक्र के

वेग ने अपने सम्बन्धियों से दूर करके मेरी शरण में पहुँचा दिया है। यह मुझे ही माता-पिता, भाई-बन्धु समझकर मेरे पास आया है। इसे मेरे सिवा और किसी का कुछ भी पता नहीं है। इसका मुझमें अत्यन्त विश्वास है। मैं भी शरणागत की उपेक्षा करने में जो दोष है, उसे जानता हूँ। इसलिए मुझे अपने इस आश्रित का भली प्रकार लालन-पालन-पोषण और प्रीणन करना चाहिए। दीनों की रक्षा करने वाले साधुजन ऐसे शरणागत की रक्षा के लिए अपने बड़े से बड़े स्वार्थों का भी परित्याग कर देते हैं।

इस प्रकार उस हिरण के बच्चे में आसक्ति बढ़ जाने से राजा भरत का चित्त उसके स्नेह-पाश में बँध गया और वे सोते-जागते भोजन आदि के समय भी उसको अपने समीप रखने लगे। उस मृग को साथ लेकर ही कन्द-मूल-फल-फूल आदि खाने के लिए वन में जाते। मार्ग में समोहवश जहाँ-तहाँ अति-स्नेह के कारण अधीर होकर उसे अपने कन्धे पर भी चढ़ा लेते। कभी-कभी उसे छाती से लगाकर दुलारते हुए आनन्द विभोर हो जाते। जब कभी वह अकेला ही वन में चला जाता, उन्हें दिखाई न देता, तो वे नष्टप्राय धन वाले कृपण पुरुष के समान अत्यन्त दुःखी होते। उनके विरह से व्याकुल और उत्कण्ठित हो, उसका ही चिन्तन एवं संतप्त हृदय से उसकी ही प्रतीक्षा करते। जब वह सामने आ जाता तो स्वस्थ-चित्त होकर, उससे अतिचार करते हुए, उसके लिए मंगल-कामना करते। उसकी पीठ पर हाथ फेरते और पुचकारते हुए कहने लगते थे कि बेटा! तेरा सर्वत्र कल्याण हो, अब तू अकेला कहीं मत भाग जाना; मेरे साथ ही रहना।

इस प्रकार तपस्वी राजा भरत उस मृग के बालक में अति दया के कारण अपने मन्द-प्रारब्ध के योग से भगवदाराधनारूप-कल्याण मार्ग से च्युत हो गये। जिन्होंने अपने ही शरीर से उत्पन्न पुत्रादिकों के दुस्त्याग स्नेह का तथा विपुल-साम्राज्य के ऐश्वर्यों

भोग-विलासों के अत्यन्त प्रगूढ़ मोह का, मोक्षमार्ग में सहज विघन रूप समझकर परित्याग कर दिया था; उन्हीं को अन्यजातीय मृग के बालक में ऐसी आसक्ति कैसे हो सकती थी? इसमें सात्विक-भावमय अतिदयारूप पाश तथा मन्दप्रारब्ध का योग ही कारण माना जा सकता है। महाराज भरत अपने अन्तिम समय तक उस मृगछौने के मोहपाश में बँधे रहे। जब उन्होंने अपना शरीर त्याग किया, उस समय भी वे प्यारे मृग को देखते रहे। उसी में उनकी आसक्ति बनी रही।

यही कारण है कि राजर्षि भरत भी साधारणजनों की भाँति दूसरे जन्म में मृग शरीर को प्राप्त हुए। तथापि पूर्वजन्म की भगवदाराधना के प्रभाव से उनकी स्मृति नष्ट नहीं हुई। वे मृगरूप होने का कारण जानकर, पश्चाताप करते हुए कहने लगे--"अहो! बड़े खेद की बात है कि मैं कल्याणमार्ग से भ्रष्ट हो गया। मैंने सब प्रकार की आसक्तियों का परित्याग कर, एकान्त और पवित्र वन का आश्रय लेकर, भक्ति एवं ज्ञान द्वारा अपने चित्त को भगवान् वासुदेव में लगाया। परन्तु हाय! मुझ मूर्ख का वही चित्त प्रारब्धवश या सात्विक दयावश एक मृग के बालक में आसक्ति करने पर पतित हो गया।" इस प्रकार पश्चाताप करते हुए, वैराग्य-भावना द्वारा अनशन व्रत धारण कर उसी गण्डकी नदी में उन्होंने अपने मृग शरीर का परित्याग कर दिया। तदनन्तर वे तृतीय जन्म में जड़भरत हुए और अपनी दृढ़ ज्ञाननिष्ठा द्वारा मुक्ति प्राप्त की।

राजर्षि भरत के इस वृत्तान्त से ज्ञात होता है कि उत्तम सत्वगुण भी कहीं बन्धन का कारण हो जाता है। इसलिए इस सत्वगुण युक्त दया आदि कार्यों से भी मुमुक्ष को सावधान रहना चाहिए।

❑❑

आधार ही मुख्य है

महाराष्ट्र के एक साधु महात्मा थे। वे श्रीगणेशजी के उपासक थे। प्राय: एकांत में रहकर श्रीगणेशजी की आराधना करते। एक बार एक श्रद्धालु-भक्त ने उनको पचास तोला सुवर्ण भेंट किया। महात्मा ने विचार किया सुवर्ण बड़ी उत्तम-धातु है। इसका हेतु रमणीय-दर्शन है, इसलिए इसको पंडित लोग हिरण्यक कहते हैं।

अत: इससे अपने आराध्यदेव की मूर्ति तथा उनके वाहन का निर्माण किया जाय तो बड़ा अच्छा होगा। विचार के अनुसार उनके एक स्वर्णकार भक्त ने २५ तोला से श्रीगणेशमूर्ति का तथा २५ तोला से उनके वाहन चूहाजी का निर्माण कर दिया। महात्माजी कई वर्ष तक श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उस मूर्ति की पूजा करते रहे।

बारह-वर्ष के बाद हरिद्वार का कुम्भ आता जाता है। उस कुम्भ में बड़े-बड़े सन्त महात्माओं का आगमन होता है। गंगातट पर मास दो मास तक उनका निवास रहता है। वहाँ सत्संग-भजन खूब होता रहता है। महाराष्ट्र के उस महात्मा ने सोचा कि कुम्भ में अवश्य चलना चाहिए, ऐसा दुर्लभ संयोग बड़ी कठिनाई से होता है, भगवत्कृपा बिना संभव नहीं होता।

परन्तु कुम्भ में जाकर सन्त महात्माओं की कुछ सेवा हो, तो सुवर्ण में सुगन्ध की तरह बड़ा अच्छा रहे। ऐसा विचार करते समय उनकी दृष्टि इन सुवर्ण मूर्तियों पर पड़ी। प्रसन्नता से महात्मा का चेहरा खिल उठा। बस, इनका सोना बेचकर जो रुपये मिलेंगे; वे सब गंगा के पावन तट पर सन्तों के भण्डारे में लगा दिये जायेंगे। अब वे महात्मा मूर्तियाँ लेकर बाजार में पहुँचे। एक परिचित

सर्राफ की दुकान में जाकर सुवर्ण का भाव पूछकर उन्हें तुलाने लगे। सर्राफ ने कहा-२५ तोला गणेश तथा २५ तोला चूहा। एक तोला का ५० रुपये भाव। अतः गणेशजी की भी बारह सौ पचास रुपये कीमत हुई तथा चूहा की भी इतनी ही कीमत। समान वजन, समान कीमत। सर्राफ की बात सुनकर महात्मा बोले-हें! हें! ऐसा कैसे हो सकता है? स्वामी और सेवक की बराबरी नहीं हो सकती। सेवक चूहा की अपेक्षा स्वामी गणेश की कीमत ज्यादा होनी चाहिए। सर्राफ बोला-महाराज! आपकी दृष्टि में गणेश है-चूहा है; परन्तु मेरी दृष्टि में न गणेश है; न चूहा है; एकमात्र सुवर्ण ही है। मैं सुवर्ण की ही कीमत दे रहा हूँ, गणेश चूहा की नहीं। सोने में गणेश एवं चूहा रह सकते हैं, परन्तु गणेश तथा चूहे में सुवर्ण नहीं रह सकता। क्योंकि-सुवर्ण को अलग करने पर गणेश तथा चूहा रहते ही नहीं, तब उनमें सुवर्ण कैसे रहे? सुवर्ण की दृष्टि में गणेश तथा चूहा न थे, न हैं, न होंगे, उनका त्रैकालिक-प्रतिबोध है यदि आप सोने से गणेश तथा चूहे को निकाल कर ले जा सकते हैं, तो निकाल लीजिये और हमारा सोना रहने दीजिये।

महात्मा वेदान्त पढ़े हुये थे ही, इसलिए सर्राफ की बात सुनकर तुरन्त समझ गये। दोनों की बराबर कीमत लेकर चल दिये।

गणेश तथा चूहा की मूर्ति में तथा आभूषणों में सुवर्ण रहता है, जहाँ ऐसा कहा जाता है; वहाँ इसका यही तात्पर्य माना जाता है कि मूर्ति कुछ नहीं, आभूषण कुछ नहीं, एकमात्र सुवर्ण ही है। इनको अग्नि में गलाने पर सुवर्ण ही अवशिष्ट रह जाता है। मूर्ति एवं आभूषण नहीं रह सकते।

□□

एकनाथ और श्रीखण्डिया

एकनाथ महाराज की लोकोत्तर भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्ण ब्राह्मण वेश में एक बार एकनाथ के घर आये और उन्हें नमस्कार कर सामने खड़े हो गये। उस समय उन दोनों में इस प्रकार संवाद हुआ:--

ब्राह्मण--आपका नाम सुना, इच्छा हुई कि आपके साथ अखण्ड समागम हो और आपकी कुछ सेवा बन पड़े, इसीलिए आया हूँ। सदैव से मैं सन्तों का सेवक ही रहा हूँ। मुझे वेतन नहीं चाहिये। पेटभर अन्न मिले और आपकी सेवा हो, इतनी ही इच्छा है।

नाथ--आपके कुटुम्ब-परिवार में कौन-कौन हैं।

ब्राह्मण--मैं अकेला ही हूँ। मेरे न कोई स्त्री है न बाल बच्चे। इस शरीर को कृष्ण या श्रीखण्डिया कहते हैं।

नाथ--आपसे सेवा लेने की मुझे आवश्यकता नहीं है। तथापि आप अन्न-वस्त्र लेकर आनन्द से यहाँ परमार्थ-साधन कर सकते हैं।

ब्राह्मण--बस, इतनी ही कृपा चाहिये। अपने परिश्रम से अन्न प्राप्त करने की इस दास को अनुमति हो। मेरी सेवा आप अवश्य ग्रहण करें।

श्रीखण्डिया एकनाथ के घर रहने लगे। उन्होंने अपने गुणों से सबको मोह लिया भगवान् की लीला कुछ ऐसी अपरम्पार है कि सब प्राणियों में भगवान् देखने वाले नाथ भी उनके उस वास्तविक रूप को नहीं पहचान सके। भगवान् ने अपनी माया का

परदा बीच में रखा, अन्यथा एकनाथ जैसे भक्त-श्रेष्ठ एक क्षण भी भगवान् से सेवा न कराते। परन्तु भगवान को एकनाथ की सेवा करना प्रिय था इसलिए नाथ जैसे पूर्ण पुरुष भी उन्हें पहचान नहीं सके। श्रीकृष्ण ने माता यशोदा को चौदहों भुवन अपने मुँह के अन्दर दिखा दिये तो भी माता के हृदय का पुत्र-भाव ज्यों-का-त्यों बना ही रहा। वैसी ही बात यहाँ भी समझनी चाहिये। भगवान् एकनाथ महाराज के यहाँ नित्य पानी भरें, देव-पूजा के निमित्त चन्दन घिसें, ब्राह्मण-भोजन के पश्चात् जूठी पत्तलें उठावें नाथ की तरह से सेवा करें।

एकनाथ के घर श्रीखण्ड (दिव्य-चन्दन) घिसकर उन्होंने अपना "श्रीख़ण्डिया" नाम सार्थक किया।

□□

परीक्षा

किसी नगर में एक सत्संगी, धार्मिक, एवं बुद्धिमान सेठ रहते थे उनकी दुकान नगर के विख्यात राजमार्ग पर थी। वे अपनी दुकान में उन्हीं मुनीमों एवं नौकरों को रखते थे जो सत्संगी एवं धार्मिक होते थे। इसके लिए वे उनकी अनेक प्रकार की परीक्षाएँ भी करते थे। एक दिन उनकी दुकान में दो व्यक्ति नौकरी करने के अभिप्राय से आये। सेठजी से मिले। उन्होंने नौकरी की अभिलाषा व्यक्त की। सेठजी ने कहा–मुझे नौकर की आवश्यकता है; परन्तु मैं परीक्षा लिये बिना नौकर नहीं रखता हूँ परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर ही नौकरी देता हूँ। तुम लोगों को भी परीक्षा देनी होगी। परीक्षा में यदि फेल हो गये तो मैं नहीं रक्खूँगा, पास हो जाओगे तो अवश्य रख लूँगा। उन दोनों ने कहा–बहुत अच्छी बात, आप जैसे चाहें, वैसे हमारी परीक्षा ले सकते हैं। हम परीक्षा देने को तैयार हैं। सेठ ने एक से हाथ का इशारा करते हुए कहा–अच्छा यह बताओ कि यह मरा हुआ मानव कहाँ जाएगा, स्वर्ग में या नरक में। उस राजमार्ग से एक मृत व्यक्ति की ठठरी जा रही थी। उसके सगे-सम्बन्धी ''राम बोलो भाई राम'' की आवाजें लगाते-हुए उसके पीछे जा रहे थे। सेठ की बात सुनकर नौकरी की अभिलाषा रखने वाला व्यक्ति सोच में पड़ गया कि यह कैसी विलक्षण परीक्षा है? इसका कैसे पता लग सकता है? तथापि वहाँ चलें, किसी से पूछने पर पता लग जायेगा। ऐसा विचार कर वह सेठ की अनुमति लेकर वहाँ पहुँच गया। अरथी के सबसे पीछे चलने वाले एक मनुष्य से कहने लगा कि महाशय मैं आपसे एक बात

पूछना चाहता हूँ। आपकी सम्मति हो तो पूछूँ। उसने कहा-अच्छा! क्या बात पूछना चाहते हो? वह बोला-बात यह है कि वह मरा हुआ व्यक्ति जिसकी ठठरी आगे जा रही है-स्वर्ग में जायेगा या नरक में? उसका प्रश्न सुनकर वह व्यंग्य कसता हुआ बोला कि ऐसा करो आप भी इसके साथ चले जाओ। साथ में जाने पर आपको पता लग लायेगा कि वह कहाँ जा रहा है। अब वह अपनी अनभिज्ञता प्रकट करता हुआ बोला कि-अरे भले मानस! यह कैसे पता लग सकता है कि वह स्वर्ग में जा रहा है कि नरक में। ''उसकी ऐसी बात सुन कर वह वापस सेठ के समीप आया और बोला-सेठजी! यह किसी को भी पता नहीं लग सकता कि मरा हुआ प्राणी कहाँ जाता है। सेठ ने उससे कहा-तुम परीक्षा में फेल हो गये। अत: तुमको मैं अपनी, दुकान में नहीं रख सकता। मालूम होता है कि तुमने कभी सत्संग नहीं किया। वनिराज तुमने कभी अनुभवी विद्वान महात्माओं के प्रवचन भी नहीं सुने। इसलिए तुमको इस बात का पता नहीं लग सकता।

अब सेठ ने नौकरी की अभिलाषा रखने वाले उस दूसरे से कहा--कहिये, तुम परीक्षा दे सकते हो। उसने कहा-हाँ जी, आप मेरी परीक्षा ले सकते हैं। सेठ इशारा करते हुए बोले--अच्छा, तुम इसका पता लगाओ--यह कहाँ जा रहा है? उस समय एक और शव वहाँ से जा रहा था। वह दूसरा व्यक्ति सत्संग का प्रेमी था, उसने अनेक महात्माओं के प्रवचन सुने थे--इसलिए वह वहाँ से उठकर उस अरथी के पीछे चलने वालों के समीप पहुँच गया। उनमें से वह एक से विवेकपूर्वक पूछने लगा, महोदय! इन मरने वाले महानुभाव का क्या शुभ नाम था? उसका ऐसा प्रश्न सुनकर वह मुहँ बनाकर बोलने लगा कि--अरे भाई! जाने दे, इसका नाम

परीक्षा

किसी नगर में एक सत्संगी, धार्मिक, एवं बुद्धिमान सेठ रहते थे उनकी दुकान नगर के विख्यात राजमार्ग पर थी। वे अपनी दुकान में उन्हीं मुनीमों एवं नौकरों को रखते थे जो सत्संगी एवं धार्मिक होते थे। इसके लिए वे उनकी अनेक प्रकार की परीक्षाएँ भी करते थे। एक दिन उनकी दुकान में दो व्यक्ति नौकरी करने के अभिप्राय से आये। सेठजी से मिले। उन्होंने नौकरी की अभिलाषा व्यक्त की। सेठजी ने कहा-मुझे नौकर की आवश्यकता है; परन्तु मैं परीक्षा लिये बिना नौकर नहीं रखता हूँ परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर ही नौकरी देता हूँ। तुम लोगों को भी परीक्षा देनी होगी। परीक्षा में यदि फेल हो गये तो मैं नहीं रक्खूँगा, पास हो जाओगे तो अवश्य रख लूँगा। उन दोनों ने कहा-बहुत अच्छी बात, आप जैसे चाहें, वैसे हमारी परीक्षा ले सकते हैं। हम परीक्षा देने को तैयार हैं। सेठ ने एक से हाथ का इशारा करते हुए कहा-अच्छा यह बताओ कि यह मरा हुआ मानव कहाँ जाएगा, स्वर्ग में या नरक में। उस राजमार्ग से एक मृत व्यक्ति की ठठरी जा रही थी। उसके सगे-सम्बन्धी "राम बोलो भाई राम" की आवाजें लगाते-हुए उसके पीछे जा रहे थे। सेठ की बात सुनकर नौकरी की अभिलाषा रखने वाला व्यक्ति सोच में पड़ गया कि यह कैसी विलक्षण परीक्षा है? इसका कैसे पता लग सकता है? तथापि वहाँ चलें, किसी से पूछने पर पता लग जायेगा। ऐसा विचार कर वह सेठ की अनुमति लेकर वहाँ पहुँच गया। अरथी के सबसे पीछे चलने वाले एक मनुष्य से कहने लगा कि महाशय मैं आपसे एक बात

पूछना चाहता हूँ। आपकी सम्मति हो तो पूछूँ। उसने कहा-अच्छा! क्या बात पूछना चाहते हो? वह बोला-बात यह है कि वह मरा हुआ व्यक्ति जिसकी ठठरी आगे जा रही है-स्वर्ग में जायेगा या नरक में? उसका प्रश्न सुनकर वह व्यंग्य कसता हुआ बोला कि ऐसा करो आप भी इसके साथ चले जाओ। साथ में जाने पर आपको पता लग लायेगा कि वह कहाँ जा रहा है। अब वह अपनी अनभिज्ञता प्रकट करता हुआ बोला कि-अरे भले मानस! यह कैसे पता लग सकता है कि वह स्वर्ग में जा रहा है कि नरक में। ''उसकी ऐसी बात सुन कर वह वापस सेठ के समीप आया और बोला-सेठजी! यह किसी को भी पता नहीं लग सकता कि मरा हुआ प्राणी कहाँ जाता है। सेठ ने उससे कहा-तुम परीक्षा में फेल हो गये। अतः तुमको मैं अपनी, दुकान में नहीं रख सकता। मालूम होता है कि तुमने कभी सत्संग नहीं किया। वनिराज तुमने कभी अनुभवी विद्वान महात्माओं के प्रवचन भी नहीं सुने। इसलिए तुमको इस बात का पता नहीं लग सकता।

अब सेठ ने नौकरी की अभिलाषा रखने वाले उस दूसरे से कहा--कहिये, तुम परीक्षा दे सकते हो। उसने कहा-हाँ जी, आप मेरी परीक्षा ले सकते हैं। सेठ इशारा करते हुए बोले--अच्छा, तुम इसका पता लगाओ--यह कहाँ जा रहा है? उस समय एक और शव वहाँ से जा रहा था। वह दूसरा व्यक्ति सत्संग का प्रेमी था, उसने अनेक महात्माओं के प्रवचन सुने थे--इसलिए वह वहाँ से उठकर उस अरथी के पीछे चलने वालों के समीप पहुँच गया। उनमें से वह एक से विवेकपूर्वक पूछने लगा, महोदय! इन मरने वाले महानुभाव का क्या शुभ नाम था? उसका ऐसा प्रश्न सुनकर वह मुहँ बनाकर बोलने लगा कि--अरे भाई! जाने दे, इसका नाम

पूछकर क्या करेगा? उसका सबेरे नाम लिया जाये तो शाम तक खाने को नहीं मिल सकता। यह आदमी ऐसा मक्खीचूस-कंजूस था, न पूछो बात। चाम टूटे पर दाम न छूटे। उसने झूठे-हाथ से कभी एक कौवा भी नहीं उड़ाया था। लड़ाकू बदमाश ऐसा था सभी कुटुम्बियों तथा मुहल्ले वालों के नाकों में दम कर रखा था। यह महानुभाव क्या? महानीच था। इसके मरने से लोगों को बड़ी राहत मिली। छल-कपट से उसने बहुत धन कमाया, परन्तु उसने कभी दान-पुण्य नहीं किया। उम्र भर पाप ही पाप कमाता रहा। अच्छे लोगों की निन्दा भी करता रहा। न कभी सत्संग में और न कभी देवदर्शन के लिए ही गया। उसके प्रिय साथी थे-एक बिल्ली और एक कुत्ता। अन्त समय उसको ही पुकारता रहा। बड़े कष्ट से उसके प्राण निकले। उपेक्षा का भाव जताता हुआ फिर कहने लगा कि-अरे भाई! जाने दे, इसकी बात, पापियों की बातें भी, पाप ही प्रदान करतीं हैं। उनसें किसी का कुछ भी भला नहीं होता। क्या करूँ, बिरादरी की शरम से हमको इसकी अरथी के पीछे चलना पड़ रहा है, नहीं तो हम कभी चलते ही नहीं।'' ऐसा कहकर वह चुप हो गया।

वह व्यक्ति, अब सेठ जी के समीप आकर कहने लगा कि-सेठजी! उस मरे हुए मानव को नरक जाने की टिकिट मिल गई है। वह यहाँ से सीधा नरक में जा रहा है। सेठ जी ने पूछा-यह तुमने कैसे जाना? उसने कहा-जिसकी यहाँ बहुत निन्दा होती हो, जिसका अपयश फैला हो जिसके नाम पर लोग नाक-भौं सिकोड़ते हों, वही व्यक्ति नरक जाता है। उसका ऐसा उत्तर सुनकर सेठ बहुत प्रसन्न हुए।

पुन: कहने लगे कि-अच्छा! यह बतलाओ कि-यह मरा हुआ कहाँ जायगा? उस समय एक अरथी फूलों से खूब सजी-धजी

हुई हजारों व्यक्ति जिसके पीछे चल रहे थे-वहाँ से जा रही थी। उसका भी पता लगाने के लिए वह उस समुदाय के समीप जाकर किसी से पूछने लगा कि-प्रिय भाईजी! यह किस महानुभाव की अरथी है? उनका क्या शुभ नाम था? वह आदर के साथ बोला कि-यह महानुभाव जिनका अमुक शुभ नाम था, हमारी बिरादरी में (जाति में) बड़े-भले पुरुष थे। बहुत उदार एवं धार्मिक एवं भगवद्भक्त थे। अपने जीवन में उन्होंने बुरा करने वालों का भी भला किया। किसी की भी वे बुराई करना जानते ही नहीं थे, और सेवा तो उनको प्राण के समान प्रिय थी। नीति से कमाये हुए धन का उन्होंने अच्छा सदुपयोग किया। और वे विनय एवं नम्रता की साक्षात मूर्ति थे। उनका मैं क्या बखान करूँ? संक्षेप में वे अनेक शुभ गुणों के रत्नाकर थे। भगवान् भले पुरुषों को दुनिया में ज्यादा दिन रहने नहीं देता, वह शीघ्र अपने पास बुला लेता है। सचमुच आज हम उनके वियोग से बहुत खिन्न हो रहे हैं। परन्तु भगवान् की मरजी के सामने सभी को लाचार होना पड़ता है। इतना कहकर वह चुप हो गया। फिर वह व्यक्ति सेठ के पास आकर कहने लगा कि सेठजी! यह महानुभाव स्वर्ग जा रहे हैं। जिनकी यहाँ मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा होती हो-वह व्यक्ति अच्छे सुख-पूर्ण धाम में ही जा सकता है, खराब स्थान में नहीं जा सकता।" उसकी ऐसी बात सुनकर सेठजी खूब प्रसन्न हुए, और कहने लगे कि तुमने खूब सत्संग किया है। अतः मेरी परीक्षा में तुम पास हो गये। इसलिए मैं अपनी दुकान में आपको सच्चे मित्र के समान अमुक वेतन पर मुनीम के पद पर रखता हूँ। मेरा विश्वास है कि आप प्रामाणिकता पूर्वक काम कर अपनी एवं फर्म की उन्नति करेंगे।

□□

मित्र का द्रोह

दो मित्र यात्रा कर रहे थे। रास्ते में बड़ा भारी जंगल पड़ता था। जंगल में शेर रहते थे। रात बिताने के लिये वे दोनों मित्र पेड़ पर चढ़ गये। दोनों बारी-बारी से सोते जागते। पेड़ पर ही दूसरा जगने वाले की गोद में सिर रखकर सो जाता। इस प्रकार जब एक मित्र सो गया तो पेड़ के नीचे शेर आया और जागने वाले मित्र से बोला-तेरी गोद में सिर रख कर जो सोया वह तेरा दुश्मन है। उसे नीचे ढकेल दे, मैं खा जाऊँ!

मित्र--यह तो मेरे विश्वास पर सो रहा है।

शेर--वह तुझे बड़ा धोखा देगा!

मित्र--धोखा देगा तो मेरा मित्र ही देगा न.......? मित्र के हाथों धोखा खाना अच्छा है। वह मारेगा तो मरेंगे, पर तुम्हारे हाथों मरने को राजी नहीं!

अन्त में शेर ने उसे खा जाने की धमकी दी, फिर भी उसने अपने मित्र को नीचे नहीं ढकेला।

दूसरे की बारी आयी तो शेर ने उससे भी वही बात कही। वह शेर की बातों में आ गया। उसने अपने मित्र को नीचे ढकेल दिया। नीचे ढकेलते ही उसकी नींद खुल गयी और जगकर देखा तो सामने शेर खड़ा था। वह पागल-सरीखा हो गया। शेर उसे खाने चला तो वह बोला--हट्-हट् छूना मत हमें। अब हम तुम्हारे खाने लायक नहीं रहे। मित्र ने मेरे साथ द्रोह किया, अब मैं जिन्दा कहाँ हूँ? मैं तो एकदम मुर्दा बन गया। मुझे छूना नहीं। आखिर शेर भी ठिठक गया।

वह सोचने लगा--हमारी रक्षा का वादा करके हमारा मित्र टल गया! उसके पुण्य जल गये, तो हमारे पुण्य भी जल गये। मैं अब किसी काम का नहीं रहा। ❑❑

गरीब की खोज

टालस्टाय की एक वहुत बढ़िया कहानी है--एक गरीब का नियम था रोज जितना मिले उसे खा लेना! एक दिन उसे एक पैसा ज्यादा मिल गया। उसका सारा काम हो गया, फिर भी एक पैसा बच गया, खर्च नहीं हुआ। उसे गाँठ में बाँधकर वह सोचने लगा--कल किसी से पूछकर अच्छे काम में खर्च कर देंगे।

दूसरे दिन वह खाता-पीता रहा। उसने पड़ोसियों से पूछा-कौन सा काम अच्छा है। पड़ोसियों ने कहा एक पैसे के लिये क्या अच्छा काम ढूँढोगे? दे दो किसी गरीब को! अब वह सबसे पूछने लगा कि तुम गरीब हो? तुम गरीब हो? पर कोई अपने को गरीब न माने!

किसी ने कहा--जाओ पण्डित, ब्राह्मण से पूछ आओ।

वह पण्डित के पास गया, तो उन्होंने बताया--धन का क्या उपयोग किया जाय, इसकी व्यवस्था देने के लिये दो रुपये चाहिए,

वह बोला--हमारे पास तो एक ही पैसा है।

पण्डित जी बोले गरीब को दे दो।

इतने में उसने सुना कि हमारा राजा दूसरे राज्य पर चढ़ाई कर रहा है, उस राज्य का धन लूटने के लिए! उसने सोचा--पैसे के लिए वह जा रहा है तो निश्चय ही गरीब होगा। कितने लोग इसमें लड़ेंगे-मरेंगे! यह लोगों को मारकर, सताकर, झूठ बोलकर पैसा लूटना चाहता है, तो वह जरूर गरीब होगा। वह जाकर रास्ते में बैठ गया।

जब वहाँ से राजा साहब का रथ निकला तो उसने अपना एक पैसा उठाकर उनकी गोद में रख दिया।

राजा ने पूछा--यह क्या?

वह बोला मैं कई दिनों से पैसा देने के लिए गरीब की खोज में था। आज आप मिल गये, तो दे रहा हूँ, इसे ले लें।

राजा ने पूछा--मैं गरीब?

वह बोला--मैंने सुना है कि आप पड़ोसी राज्य पर आक्रमण करने जा रहे हैं। इस युद्ध में कितने लोगों का शोषण होगा। बेईमानी होगी, लोग मरेंगे! पैसे के लिए! तो आप-सरीखा गरीब इस सृष्टि में और कोई नहीं।

राजा को यह सुनकर ज्ञान हुआ--'राम, राम, राम, मैं तो बड़ा भारी अन्याय करने जा रहा था, मात्र पैसे के लोभ में।

गरीब के एक पैसे ने दो राष्ट्रों के युद्ध को बचा लिया।"

□□

शुभ कार्य में अनेक विघ्न

किसी समय आनन्दकन्द विश्वान्तर्यामी प्रभु–भगवान् श्रीकृष्ण ने भीमसेन से कहा था कि:--

"विद्यार्या धन्विनां कोटिः, तदर्ध हरिमंदिरे।।"

तदर्धाजाह्ववीतीरे, तदर्ध दक्षिणे करे।।"

ब्रह्म विद्या में एक करोड़ धनुर्धारी योद्धा विघ्न करने के लिये खड़े रहते हैं। हरिमंदिर में, जहाँ भगवान् का पावन दर्शन एवं सत्संग होता है, वहाँ पचास लाख विघ्नकारी योद्धा खड़े रहते हैं और वे जाने वालों को रोकते हैं। गंगातीर पर मोक्षकारी पापहारी स्नान लाभ में रुकावट डालने के लिए पचीस लाख योद्धा खड़े रहते हैं। इसके साथ ही दान देने में प्रतिरोध डालने के लिए दक्षिण हस्त में साढ़े बारह लाख योद्धा रहते हैं। ताकि वह दान देने के लिये दाहिना हाथ खोल न दे।

इस श्लोक को भगवान के श्री मुखारविन्द से सुनकर भीमसेन हँसते हुए कहने लगे-भगवान् यह श्लोक तो मुझे कोरी गप्प के समान झूठा मालूम पड़ता है। भगवान ने दृढ़ता के साथ कहा--'नहीं नहीं, झूठा कभी नहीं हो सकता, यह किसी शास्त्र का प्रामाणिक वचन है।'

भीमसेन ने कहा-'इतनी बड़ी संख्या वाले ऐसे विघ्नकारी योद्धा कहीं देखने में तो नहीं आते हैं, फिर यह वचन कैसे हो सकता है?'

भगवान् ने कहा--'कहीं गुपचुप छिपे बैठे रहते होंगे, इसलिये देखने में नहीं आते।'

भीमसेन बोले--'तब तो इसका परीक्षण अवश्य करना चाहिए। मैं इस समय गंगा तट पर जाकर देखूँगा कि वे योद्धा कहाँ छिपे रहते हैं और स्नान करने में विघ्न डालते हैं।

भगवान् की अनुमति प्राप्त कर भीमसेन गंगा तट पर गये। अश्वारूढ़ होकर दोनों किनारों की झाड़ियों में विघ्नकारी योद्धाओं को सबेरे से लेकर शाम तक ढूंढते रहे। परन्तु भीमसेन को एक भी योद्धा नहीं मिला। निराश होकर वापस लौटकर भीमसेन भगवान् से कहने लगे कि हे प्रभो! वह श्लोक बिल्कुल गप्प है, गंगातट पर एक भी योद्धा नहीं है।

हँसते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने भीमसेन से कहा--अच्छा जी! नही मिला तो नहीं सही। परन्तु यह तो बतलाने की कृपा करें कि--आप प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक दस घण्टे गंगातट पर घूमते रहे, गंगा-स्नान किया कि नहीं।

भीमसेन ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा--भगवान्! स्नान करना तो मैं भूल गया। स्नान तो क्या? आचमन एवं प्रेक्षण भी न कर सका। योद्धाओं के ढूंढ़ने की धुन लगी थी जो।

तब भगवान् भीमसेन की पीठ थपथपाते हुए हँसकर कहने लगे--तब तो शास्त्र का वह वचन प्रामाणिक हो गया। दृश्य नहीं, अदृश्य रूप में ही सही, यह तो मानना ही पड़ेगा कि योद्धा वहाँ खड़े हुए हैं, आपके गंगा स्नान में वे विघ्न डाल करके ही रहे।

भगवान् के युक्ति-युक्त वचन सुनकर भीमसेन लज्जित हो, चुप हो गये।

❑❑

अन्तिम समय में

किसी नगर में एक करोड़पति सेठ रहता था। उसके कई पुत्र थे। अपने बंगले में अपनी सेठानी के साथ इधर-उधर की गप्प-शप्प लगाते ही वह एकाएक बेहोश हो गया। आजकल और सभी वस्तुएँ तो महँगी हो गयी हैं, परन्तु असंयम की प्रचुरता एवं चिन्ताओं की अधिकता के कारण सभी रोग सस्ते हो गये हैं। और मृत्यु तो बिना बुलाये ही गला पकड़ने के लिए अकस्मात् छोड़ी जाती है। अब क्या था? बंगले का टेलीफोन खटखटाने लगे। देखते ही देखते सभी लड़के, सगे सम्बन्धी तथा इष्ट मित्र वहाँ पहुँच गये। आकर लड़के देखते हैं कि पिताजी निश्चेष्ट होकर पड़े हुए हैं, न देखते हैं, न बोलते हैं, न सुनते हैं; पिताजी की बड़ी खराब दशा हो गयी है। लड़कों ने मोटरें भेजकर अतिशीघ्र डाक्टर और वैद्य बुलाये। डाक्टरों से लड़कों ने कहा--चाहे कितना भी खर्च हो, उसकी परवाह नहीं; किन्तु एक बार पाँच मिनट के लिए पिताजी से बात करा दीजिए। डाक्टरों ने कहा कि अभी दीपक सर्वथा बुझ नहीं गया है--अति मन्द प्रभा से कुछ-कुछ टिमटिमा रहा है! तुरन्त ही डाक्टरों ने केसर कस्तूरी के इन्जेक्शन दिये। उसके प्रभाव से मरणासन्न सेठ की आँखें खुलीं। सुधबुध वापस आयी जानकर लड़के लोग प्रसन्न हो गये।

वहाँ इकट्ठे होने वाले लोग सोच रहे थे कि अन्तिम समय में लड़के अपने पिता के कल्याण की कुछ बातें करेंगे परन्तु ज्ञान आने पर लड़कों ने उस समय अपने ही स्वार्थ की बात निकाली। कहने लगे, पिताजी! बतलाते जाओ कहाँ क्या रखा है? पास में

खड़ी हुई सेठानी भी रोती-रोती बोलने लगीं कि 'हाय रे! आप तो जा रहे हैं? परन्तु मेरा क्या होगा?' तुम्हारा क्या होगा--तुमको तो यह बेचार सब कुछ देकर खाली हाथ यहाँ से जा रहा है। ऐसा किसी ने मन में कहा। उस समय वह सेठानी यह नहीं कहती है कि आपको क्या हो रहा है। बेचारे सेठ को--जो सदा के लिए सब कुछ छोड़कर यहाँ से जा रहा है, उसकी किसी को कुछ भी परवाह नहीं है। सभी को अपनी ही परवाह है। सभी सम्बन्धी अपने ही मन की बात करते हैं, उसके हित की बात नहीं सोचते। यह है--संसार के सफेद स्वार्थीपन का नमूना।

❑❑

संत तुकारामजी व पिशाच

अर्वाचीन युग के महाराष्ट्र के सन्त तुकाराम जी भगवान के अनन्य भक्त थे। सभी में भगवान का ही दर्शन करते थे। एक समय एक स्थान पर तुकाराम की भक्त-मण्डली प्रेम के साथ बड़ी तन्मयता से 'हरे राम, हरे कृष्ण' की पावन धुन लगा रहे थे। रात्रि का समय था, कुछ भक्तों को जोरों की प्यास लगी। एक पुराना भक्त समीप की बावड़ी में गगरी हाथ में लेकर जल भरने गया। बावड़ी में कुछ सीढ़ियाँ उतरने के बाद वहाँ रहने वाला एक ब्रह्म पिशाच उसको दिखाई पड़ा। उसकी भयंकर आकृति देखकर वह भक्त वहीं गगरी पटक कर भाग निकला। बावड़ी के बाहर बड़ी कठिनाई से निकलकर भूत-भूत चिल्लाता हुआ आगे जाकर भय से मूर्छित हो गया। कुछ लोगों ने उसको उठाकर पानी के छींटे देकर सचेत किया। उसने भयातुर स्वर से भूत-दर्शन का वृत्तान्त सुनाया। सन्त तुकाराम भी समीप में आकर यह सब वृत्तान्त सुन रहे थे। हँसते हुए वे बोले--अरे भोले भक्त, तूं भूतभगवान से क्यों डर गया? इस विश्व में भगवान के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

भक्तवर तुकाराम जी की ऐसी वाणी सुनकर वह भयभीत भक्त झुँझलाकर बोल उठा--बावड़ी में जाइये तो सही, वहाँ कैसे भूत भगवान हैं, पता लग जायेगा। तुकाराम जी तुरन्त ही गगरी एवं करतालें हाथ में लेकर बावड़ी के अन्दर पहुँच गये। वहाँ ब्रह्म राक्षस था ही। उसने अपने भयंकर रूप को तुकाराम जी के समक्ष प्रकट किया। तुकाराम जी ने उसे भी दृढ़-पुनीत भगवद्भावना

से देखा। अनन्य प्रेम से करतालें खटखटाते--"राम कृष्ण हरि" बोलते हुए नृत्य करने लगे। भूत-भगवान की स्तुति करते हुए कहने लगे, हे प्रभो! चौबीस? अवतारों के रूप से भिन्न यह निराला स्वरूप मेरे लिए ही आपने प्रकट किया है। धन्य है, आपकी महिमा। कैसे सुन्दर नेत्र हैं, बड़े दाँत हैं, लम्बे-लम्बे हाथ हैं। वाह मेरे बहुरूपिये भगवान! आज मैं आपके इस अभिनव-आनन्दमय स्वरूप का दर्शन कर धन्य हो गया। भक्त की इस दृढ़ भगवद्भावना से भूत को भगवान बनना ही पड़ा। भगवान ने भयंकर भूत के भीतर अपने भयंकर, प्रसन्न, परम रमणीय, मधुर आनन्दमय स्वरूप का दर्शन दिया।

□□

क्रोध ही अपराध है

एक राजा के यहाँ कर्मकाण्ड कराते हुए पुरोहित से कुछ भूल हो गयी, राजा को क्रोध आ गया। यद्यपि पुरोहित ने भूल के लिए क्षमा माँगी और प्रार्थना की; किन्तु राजा ने उन्हें राजपुरोहित पद से पृथक कर राजभवन से निकाल दिया। पण्डित ने कई दिन प्रयत्न किया, किन्तु राजा प्रसन्न नहीं हुए।

एक दिन राज भवन के भंगी ने पण्डितजी को प्रणाम करके पूछा--महाराज! आप आजकल इतने दु:खी क्यों रहते हैं?

पण्डितजी बोले--भाई, राजा ने मुझे राजपुरोहित पद से हटा दिया है। मेरी आजीविका चली गयी। कई बार प्रार्थना की, किन्तु उनका क्रोध शान्त नहीं हुआ।

भंगी--आप धैर्य रखें। मैं प्रयत्न करूँगा।

अब उस दिन से भंगी जब राजभवन की सफाई करने जाय, तो पुकार करे--महाराज! मुझ गरीब की सुनी जाय। मेरा न्याय किया जाय।

कई दिन यह पुकार कान में पड़ने पर राजा ने एक दिन उसे बुलाकर पूछा कि वह क्या कहना चाहता है?

भंगी बोला--मैंने सुना है कि मेरा एक भाई यहाँ राज सदन में आया और उसे आपने अपने पास रोक लिया। उसे छुटकारा देने की कृपा की जाय।

राजा--राजभवन में चाण्डाल को मैं क्यों रोकूंगा?

भंगी--मुझे ठीक पता लगा है कि आपने मेरे भाई को अपने पास रोक रखा है।

से देखा। अनन्य प्रेम से करतालें खटखटाते--"राम कृष्ण हरि" बोलते हुए नृत्य करने लगे। भूत-भगवान की स्तुति करते हुए कहने लगे, हे प्रभो! चौबीस? अवतारों के रूप से भिन्न यह निराला स्वरूप मेरे लिए ही आपने प्रकट किया है। धन्य है, आपकी महिमा। कैसे सुन्दर नेत्र हैं, बड़े दाँत हैं, लम्बे-लम्बे हाथ हैं। वाह मेरे बहुरूपिये भगवान! आज मैं आपके इस अभिनव-आनन्दमय स्वरूप का दर्शन कर धन्य हो गया। भक्त की इस दृढ़ भगवद्भावना से भूत को भगवान बनना ही पड़ा। भगवान ने भयंकर भूत के भीतर अपने भयंकर, प्रसन्न, परम रमणीय, मधुर आनन्दमय स्वरूप का दर्शन दिया।

❑❑

क्रोध ही अपराध है

एक राजा के यहाँ कर्मकाण्ड कराते हुए पुरोहित से कुछ भूल हो गयी, राजा को क्रोध आ गया। यद्यपि पुरोहित ने भूल के लिए क्षमा माँगी और प्रार्थना की; किन्तु राजा ने उन्हें राजपुरोहित पद से पृथक कर राजभवन से निकाल दिया। पण्डित ने कई दिन प्रयत्न किया, किन्तु राजा प्रसन्न नहीं हुए।

एक दिन राज भवन के भंगी ने पण्डितजी को प्रणाम करके पूछा--महाराज! आप आजकल इतने दुःखी क्यों रहते हैं?

पण्डितजी बोले--भाई, राजा ने मुझे राजपुरोहित पद से हटा दिया है। मेरी आजीविका चली गयी। कई बार प्रार्थना की, किन्तु उनका क्रोध शान्त नहीं हुआ।

भंगी--आप धैर्य रखें। मैं प्रयत्न करूँगा।

अब उस दिन से भंगी जब राजभवन की सफाई करने जाय, तो पुकार करे--महाराज! मुझ गरीब की सुनी जाय। मेरा न्याय किया जाय।

कई दिन यह पुकार कान में पड़ने पर राजा ने एक दिन उसे बुलाकर पूछा कि वह क्या कहना चाहता है?

भंगी बोला--मैंने सुना है कि मेरा एक भाई यहाँ राज सदन में आया और उसे आपने अपने पास रोक लिया। उसे छुटकारा देने की कृपा की जाय।

राजा--राजभवन में चाण्डाल को मैं क्यों रोकूंगा?

भंगी--मुझे ठीक पता लगा है कि आपने मेरे भाई को अपने पास रोक रखा है।

राजा--कौन है वह?

भंगी--उसका नाम क्रोध है?

अब राजा हँसे। उन्होंने भंगी से पूरी बात पूछी और पण्डितजी को क्षमा करके पुनः राजपुरोहित बना लिया।

चाण्डाल का अर्थ क्रोध ही है। इसलिए अपने हृदय में क्रोधरूपी चाण्डाल को मत बसाओ। चित्त में प्रज्ञारूपी ब्राह्मण को अंगीकार करो। यदि तुमको क्रोध करना है, तो इस क्रोध की वृत्ति पर ही तुम क्रोध क्यों नहीं करते हो?

सबसे बड़ा अपराधी तो क्रोध ही है। इसके आने पर हृदय जलता है। नेत्र लाल हो जाते हैं। मुख काला हो जाता है। शरीर काँपने लगता है। बुद्धि नष्ट हो जाती है। इतना बड़ा अपराध तो क्रोध ही करता है।

❑❑

श्रद्धा और विश्वास

दो मित्र कहीं यात्रा में जा रहे थे। मार्ग में एक वृक्ष के नीचे दोनों विश्राम करने बैठे। उनमें से एक मित्र दूसरे की गोद में सिर रखकर सो गया।

इतने में वहाँ एक सर्प आया। जागने वाले ने सर्प को रोका तो सर्प बोला--इसने पहले मुझे लाठी से मारकर मेरा रक्त निकाला है। मैं इससे अपना बदला अवश्य लूँगा।

मित्र बोला--इसने तुम्हें मारा तो था नहीं, रक्त ही निकाला था। यदि इसका रक्त निकल जाय तो तुम्हारा बदला पूरा हो जायगा?

सर्प--हाँ, मुझे रक्त ही चाहिए।

उस मित्र ने अपनी कमर से छुरा निकाला और सोने वाले मित्र के गले पर लगाया। सोने वाले के गले का चर्म कटा तो उसकी नींद टूट गयी। उसने नेत्र खोले, किन्तु जब देखा कि उसका मित्र ही छूरा गले पर लगाये है तो नेत्र बन्द कर लिये। उसका थोड़ा रक्त निकालकर उस मित्र ने सर्प को दे दिया। सर्प के चले जाने पर मित्र को जगाकर उसने जब पूछा तो सोने वाले ने बताया--मुझे दर्द तो हो रहा था, किन्तु जब मैंने देखा कि छूरा तुम्हारे हाथ में है तो समझ लिया कि इसमें मेरे किसी हित की बात ही होगी। इसलिए मैं निश्चिन्त हो गया।

ऐसी ही एक और घटना दिवंगत महाराज जयपुर के सम्बन्ध में है। जिस गोल मेज कान्फ्रेन्स में गांधी जी तथा मालवीय जी लन्दन गये थे, उसमें जयपुर नरेश को भी जाना था। पहले तो

उन्होंने यात्रा करना अस्वीकार कर दिया किन्तु जब एक सर्वथा नवीन जहाज उनके तथा कर्मचारियों के लिए ही दिया गया तो उन्होंने लन्दन जाना स्वीकार कर लिया। जहाज में एक कक्ष महाराज के पूजा का था। उसमें नरेश के आराध्य श्री गोविन्दजी विराजते थे। अचानक समुद्र में तूफान आया और संकट की स्थिति आ गयी। ऐसे समय में महाराज ने अपने सिपाहियों से कहा--मैं श्री गोविन्द जी के चरणों में बैठता हूँ। तूफान शान्त हो जाय तो मुझे सूचना देना। अन्यथा मैं तो गोविन्दजी के पास हूँ ही। यह कहकर महाराज पूजा के कक्ष में चले गये और उसका द्वार बन्द कर लिया। तूफान शान्त होने पर सूचना पाकर ही उन्होंने द्वार खोला।

❑❑

प्रेम के मार्ग में अभिमान

एक बार द्वारका में भगवान् ने एक साथ अपने तीन पार्षदों का अभिमान दूर किया। सत्यभामा को अभिमान था कि उनसे सुन्दर कोई स्त्री है ही नहीं। गरुड़ को अभिमान था कि उनके वेग की कोई समानता नहीं कर सकता। चक्र को अभिमान था कि वही द्वारिकापुरी की रक्षा करता है। श्री हरि तो गर्व नष्ट करने वाले हैं। उन्होंने इन तीनों के गर्व को दूर करने का निश्चय किया। गरुड़ को उन्होंने आज्ञा दी-"हनुमान जी को बुला लाओ।"

गरुड़ मन्दराचल पर पहुँचे और उन्होंने हनुमान जी से कहा--"आपको भगवान् ने द्वारका बुलाया है। झटपट मेरी पीठ पर बैठ जाइये।"

हनुमान् जी बोले--"आप चलिये, मैं आ रहा हूँ। आपसे मैं पहले ही पहुँच जाऊँगा।"

गरुड़--"आप समझते तो हैं नहीं। द्वारका यहाँ से बहुत दूर है। कूदते-कूदते भी आप चलेंगे तो मार्ग में कई दिन लग जायें गे। मेरी गति वायु से भी तीव्र है। मैं आपको अभी पहुँचा दूँगा।"

हनुमान--"आप हठ मत करें। मैं कुछ क्षण पीछे चलूँगा। मुझे वाहन की आवश्यकता नहीं है।

गरुड़--"भगवान ने मुझे आज्ञा दी है कि आपको बुलाकर लाऊँ। चुपचाप पीठपर नहीं बैठेंगे तो मैं आपको बलपूर्वक पकड़ ले जाऊँगा।"

गरुड़ की बात से हनुमान जी समझ गये कि इन्हें, गर्व है और प्रभु मेरे द्वारा ही इनका गर्व दूर करना चाहते हैं। अत: उन्होंने पंख पकड़कर गरुड़ को जब फेंका, तो वे समुद्र में जा गिरे। हनुमान जी ने छलाँग लगायी और द्वारका पहुँच गये।

उधर श्रीकृष्णचन्द्र ने चक्र से कहा था कि नगर में वह किसी को आने न दे और सत्यभामा जी से कहा-"आज हनुमान को बुलाया है। उनके सम्मुख तो मुझे श्रीराम रूप में रहना है; किन्तु अकल्पनीय सौन्दर्यमूर्ति श्रीजानकी के स्थान की पूर्ति कैसे होगी?" सत्यभामा ने कहा--"मैं सीता बनकर आपके साथ बैठूँगी।"

हनुमान जी द्वारका पहुँचे तो चक्र ने उन्हें जाने से रोका। हनुमानजी ने कहा-"मुझे भगवान ने बुलाया है। गरुड़ पीछे आ रहे हैं। तुम उनसे पूछ लेना। "लेकिन चक्र ने जब इतने पर भी मार्ग नहीं छोड़ा तो उसे पकड़कर पवनपुत्र ने अपने मुख में रख लिया। वहाँ से भगवान के निज सदन में गये। सिंहासनासीन श्रीकृष्ण-सत्यभामा को देखकर हनुमानजी ने श्रीकृष्णचन्द्र के चरणों में मस्तक रखकर प्रणाम किया। "किन्तु सत्यभामा की ओर ध्यान ही नहीं दिया।

श्रीकृष्णचन्द्र ने पूछा--"हनुमान आज तुम चुप क्यों हो?" हनुमानजी ने मुख से चक्र को बाहर निकाला और बोले-यह मार्ग में मुझे रोक रहा था। अत: इसे मुख में रखना पड़ा; किन्तु प्रभु! आज आपने महारानी श्री विदेहनन्दिनी के स्थान पर यह किस दासी को बैठा लिया है?"

सत्यभामा जी तो यह सुनते ही सिंहासन से उठ गयीं। श्यामसुन्दर हँसे और बोले यह तो हमारे घर की अपनी बात है। लेकिन तुम्हे कोई बुलाने भी तो गया था।"

हनुमान--"गरुड़ बहुत मन्दगामी हैं। इसलिए वे पीछे आ रहे होंगे।" इसी समय जल में भीगे गरुड़ आ गये। हनुमान जी के शब्द उन्होंने सुन लिए थे। लज्जा से उनका मस्तक झुक गया था।

वस्तुतः प्रेम के मार्ग में अभिमान नहीं चलता है।

❑❑

कौन कातेगा

एक बड़ा नगर था। उसमें एक न[illegible] [illegible] राजमार्ग पर अच्छा चौमंजिला मकान था। उस मकान की [illegible]गाशी पर बैठकर सेठ का लड़का, एक रोज रुई के बड़े-बड़े गट्ठरों से लदे हुए हजारों ऊँटों के काफिले वहाँ से जाते हुये देख रहा था। पुराने जमाने में, ऊँट ही मरुभूमि की मालगाड़ी थे। इनके द्वारा ही लोग वस्तुओं का आदान-प्रदान इधर से उधर करते रहते थे। लड़के का चित्त रुई के असंख्य गट्ठरों में ऐसा उलझ गया कि वह और सब कुछ भूल गया, उन गट्ठरों की ही चिन्ता करने लगा। "अरे! इनको कौन कातेगा? कौन बुनेगा। कौन कातेगा? कौन बुनेगा।', बार-बार यही सोचने और बोलने लगा। इसी चिन्ता के कारण वह पागल हो गया। उसके पिता-सेठ को बड़ी चिन्ता हुई अरे! इस लड़के को क्या हो गया? हरदम यही बकता रहता है "कौन कातेगा? कौन बुनेगा? अनेक वैद्य हकीमों की दवाई की, परन्तु रोग की एवं उसके प्रलाप की निवृत्ति नहीं हुई। क्योंकि वैद्यों को रोग की जड़ का ही पता नहीं लग रहा था।

एक दिन उस सेठ के मकान में एक महात्मा आये। सेठ ने महात्मा को बड़ी नम्रता के साथ अपने लड़के की हालत बतलाई। महात्मा ने लड़के को देखा। तुरन्त ही अपनी अलौकिक-प्रतिभा से रोग की जड़ पहिचान गये। महात्मा ने निश्चय किया कि इसका हृदय अत्यन्त दुर्बल है। अत: यह व्यर्थ की चिन्ता से उद्विग्न हो गया। महात्मा ने सेठ से कहा-"आप चिन्ता न करें, लड़का अच्छा हो जायेगा। इसके दिल में सिर्फ उल्टी चाबी लग गई है,

अब उसमें सही चाबी लगानी होगी। ऐसा कहकर महात्मा उस पागल लड़के को उसी आगाशी में ले गया। ऊँटों के ऊपर लदे हुए रुई के गट्ठरों की बात करने लगे, लड़का गट्ठरों की बात सुनकर और ज्यादा चिन्ताग्रस्त हो गया। महात्मा ने कहा--अरे भाई! रुई के ये सब गट्ठर अमुक मैदान में रखे गये थे। उनका इतना बड़ा ढेर पहाड़ के ऊँचे शिखर के समान लग गया था। ओ हो हो! क्या कहा जाय, ऐसा हाथ के इशारे से बतलाने लगे; परन्तु उसमें किसी बीड़ी पीने वाले ने जलती हुई बीड़ी फेंक दी थी। फिर क्या था? लग गई उसमें आग। सब जल गया। राख हो गई, रुई के इतने बड़े सब गट्ठर समाप्त हो गये। अब तू इसकी चिन्ता मत कर। सब खेल खलास। हरिः ओम तत्सत्।

महात्मा के इस प्रकार के युक्तियुक्त वचन सुनकर लड़के की चिन्ता दूर हो गई। लड़के के दिल में निश्चय हो गया कि वे सब रुई के गट्ठर जल गये। अब उनकी कताई-बुनाई की व्यर्थ चिन्ता क्यों की जाय। पराये माल में व्यर्थ की आसक्ति एवं चिन्ता छोड़ने पर लड़का स्वस्थ हो गया। उसका पिता सेठ भी प्रसन्न हुआ।

इसी प्रकार ऊँटों के ऊपर लदे हुए रुई के हजारों गट्ठरों के समाज मूढ़-प्राणियों के दिलों पर हजारों असद्भाव के गट्ठर बँधे हैं। इन मिथ्या भावों की आसक्ति एवं चिन्ता से अपने स्वरूपानन्द से च्युत होकर यह जीव पागल सा हो गया है। जब इनमें ज्ञानाग्नि की चिनगारी पड़ जाती है, तब ये सब असद्भाव भस्म हो जाते हैं। एक अविनाशी शाश्वत ब्रह्मभाव ही शेष रह जाता है।

□□

अपवित्र कौन?

एक बार एक महात्मा घूमते हुए वृन्दावन पहुँचे। वहाँ यमुना किनारे धूनी लगाये हुए कुछ साधु चिलम चढ़ाकर दम लगा रहे थे। वे महात्मा भी उनके पास जाकर बैठ गये। उसी समय एक चाण्डाल वहाँ आकर यमुना में स्नान करने लगा। इस पर धूनी वाले साधु बहुत क्रुद्ध हुए। उनमें से एक ने कहा--"हमारे घाट पर स्नान करके घाट अपवित्र करता है" और जलती हुई लकड़ी खींचकर चाण्डाल को मार दी। चाण्डाल ने कुछ कहा नहीं, चुपचाप जल से निकलकर दूर जाकर फिर स्नान करने लगा। यह देखकर वे महात्मा चाण्डाल के पास गये और पूछने लगे--"तुमने वहाँ स्नान तो कर लिया था, अब दुबारा क्यों स्नान करते हो?"

चाण्डाल बोला--मेरा तो शरीर चाण्डाल का है किन्तु उस साधु के मन में क्रोधरूपी चाण्डाल आ गया और उसने मुझे छू लिया। उसके मन से मेरे मन में वह न आ जाय, इसलिये दुबारा स्नान कर रहा हूँ। शरीर का चाण्डाल होना उतना बुरा नहीं है जितना कि मन में चाण्डाल का बस जाना। इसलिए भक्त अपने हृदय में कभी क्रोधरूपी चाण्डाल को प्रवेश नहीं करने देता। वह तो हृदय में भगवान को बसाता है। इसीलिए भक्त क्षमावान होता है।

□□

नस-नस में भक्ति

एक बार अर्जुन जब द्वारका में थे, श्रीकृष्ण के राजभवन में सो गये। सोते हुए उनके श्वास से "कृष्ण-कृष्ण" की ध्वनि निकलने लगी। जागते हुए लोगों से नाम-संकीर्तन को तो श्रीकृष्णचन्द्र ने बहुत सुना था, किन्तु यह सोते हुए अर्जुन के निःश्वास से निकलती नामध्वनि पहली बार सुनायी पड़ी थी। भगवान श्रीकृष्ण प्रेम-गद्‌गद् हो शान्त होकर उसे सुनने लगे-उधर महारानी रुक्मिणी के राजभवन में कोई उत्सव था। उसमें पूजन दान के लिये समय पर श्रीकृष्ण नहीं आये तो रुक्मिणी को चिन्ता हुई। देवर्षि नारद ने कहा, मैं बुलाकर लाता हूँ।

देवर्षि पहुँचे तो श्रीकृष्ण ने संकेत कर दिया कि "चुप रहिये। बोलिये मत!" अर्जुन के प्रवास से निकली नाम-ध्वनि सुनकर देवर्षि भी प्रेम विभोर हो उठे और अपनी वीणा पर धीरे-धीरे अँगुली चलाने लगे। जब देर तक नारदजी नहीं लौटे तो सत्यभामाजी बुलाने आयीं। द्वारकाधीश ने उन्हें भी चुप रहने का संकेत कर दिया। वे भी उस ध्वनि से प्रेममग्न हो, ताली बजाकर ताल देने लगीं। इन्हें भी जब देर हुई तो स्वंय महारानी रुक्मिणी पधारीं। उन्होंने भी जब अर्जुन के श्वास से निकलती "कृष्ण-कृष्ण" की ध्वनि सुनी; देवर्षि को वीणा-बजाते, सत्यभामा को ताल देते तथा श्रीकृष्ण को प्रेम-विभोर देखा, तो वे भी प्रेम विह्वल होकर नृत्य करने लगीं। उन्हें नृत्य करते देखकर नटनागर भी नाचने लगे। प्रेम के इस आवेश में यह सब भूल गये कि अर्जुन सो रहे हैं। इस नृत्य-संगीत के कोलाहल से अर्जुन जागे तो चकित रह

गये। उन्होंने पूछा-आज यह उत्सव कैसा! भगवान बोले, अर्जुन! आज तुम्हारे दिल का राज जाहिर हो गया, इस लिए यह उत्सव हो रहा है।

इस कथा का तात्पर्य यह है कि भक्त भगवान से सदा युक्त रहे। सोते-जागते, चिल्लाते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते सभी स्थितियों में प्रभु का स्मरण करता रहे, तभी ईश्वर भी उनका हर प्रकार से कल्याण करते हैं।

□□

दिखता है, लेकिन मिलता नहीं

यह प्राणी, मन को भ्रान्ति प्रिय विषयों से अथवा स्त्री पुत्र धनादि से जितना ही सम्बन्ध जोड़ता है, जितनी ही प्रीति बढ़ाता है, उतने ही इसके हृदय में विविध प्रकर के शोकों के कीले गड़ जाते हैं। मरुभूमि के भासमान जल की भाँति मूढ़ प्राणियों को इनमें सुख अवश्य दीखता है, परन्तु वह सब बड़ा भारी धोखा है, मिथ्या है।

एक महारानी महल के ऊपरी खुली छत में अपने बहुमूल्य हीरे के हार को एक जगह रखकर-स्नान कर रही थीं। इतने में एक बाज पक्षी वहाँ आया और वह रक्खे हुये चमकीले हीरों वाले हार को खाद्य-भ्रान्ति से लेकर उड़ गया। उड़ता हुआ वह बहुत दूर स्थित एक सरोवर के तट अवस्थित वृक्ष की सर्वोच्च शाखा के ऊपर जा बैठा। बाज बैठकर हार के उन हीरों को चोंच से चबाने लगा, परन्तु उसमें उसे किसी भी प्रकार के रसास्वाद का अनुभव नहीं हुआ। वह पक्षी उस हार को वहीं छोड़कर उड़ गया। उस मनोहर हार का प्रतिबिम्ब सरोवर के स्वच्छ जल में दिखने लगा। सरोवर के तट पर से जाने वाले एक यात्री को वह हार सरोवर में दीख पड़ा। देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ और तुरन्त ही डुबकी लगा नीचे जाकर हार को खूब ढूंढा; परन्तु हार नहीं मिला। अन्त में हताश होकर वह बाहर निकला। स्वच्छ जल में पुनः वही हार दीखने लगा। फिर वह जल में कूदा, ढूँढा-बहुत परिश्रम किया, फिर भी हार नहीं मिला। पुनः बाहर निकलकर स्वच्छ हुए जल में हार को देखता है सोचता है-अरे यह क्या

बात है कि हार दीखता है अवश्य, परन्तु मिलता नहीं। फिर हार के लिए उसने बार-बार प्रयत्न किया परन्तु उसको हार मिला नहीं। बहुत दुखी होकर वह वहाँ से चल पड़ा।

इसी प्रकार दूसरा यात्री आया। उसने भी सरोवर में हार देखा! वह भी उसे लेने के लिए कूद पड़ा, खूब प्रयत्न किया, परन्तु उसका भी प्रयत्न निष्फल हो गया। वह बार-बार हार को सरोवर में देखता रहा और प्राप्त करने के लिए पुनः-पुनः प्रयत्न करता रहा परन्तु हार उसे भी नहीं मिल सका। "दीखता है परन्तु मिलता नहीं" वह भी आश्चर्य के साथ ऐसे कहता हुआ वहाँ से बिदा हो लिया।

इस प्रकार सरोवर के तट पर अनेक यात्री आए, सबने विविध प्रयत्न किये, परन्तु कोई भी हार प्राप्त करने में सफल नहीं हुआ। क्योंकि वहाँ पर हार वस्तुतः नहीं था।

एक यात्री बड़ा बुद्धिमान तथा सत्संगी था, उसने अनेक व्यक्तियों के मुख से "दीखता है, परन्तु मिलता नहीं" ऐसा सरोवर का वृत्तान्त पहले ही सुन रखा था। वह भी वहाँ आया। आकर उसने ध्यान से देखा। विचार करने पर मालूम हुआ कि सरोवर का हार प्रतिबिम्ब मात्र (आभास मात्र) है। अतएव उसके वास्तविक स्वरूप का अन्वेषण करना चाहिए। वह अन्य मूढ़ यात्रियों के समान नीचे देखने के बदले ऊपर देखने लगा। ऊर्ध्वदृष्टि करने पर उसको वास्तविक विद्यमान हार का समुज्वल-मनोहर स्वरूप दीख पड़ा। वृक्ष के ऊपर चढ़कर उसने सर्वोच्च शाखा पर स्थित हार को प्राप्त कर लिया।

□□

सज्जन की सज्जनता

जिस समय युधिष्ठरादि--पाण्डव वन में निवास कर रहे थे और साधु-महात्माओं के समान अकिंचन हो, झोपड़ियों में वन्यफल-मूलादि से उदर निर्वाह किया करते थे; उस समय दुर्योधनादि-कौरवों ने पाण्डवों को नीचा दिखाने एवं संताप देने के लिए उनके निवास के समीप ही गड्ढा तट पर बड़े भारी वन-महोत्सव का आयोजन किया। अच्छे-अच्छे वस्त्रालंकारों से सुसज्जित होकर अपनी-अपनी रानियों के साथ वाहनों में बैठकर अपने बल-ऐश्वर्यादि के सूचक-गलगर्जन हँसी-मजाक आदि करते हुए वहाँ ये जाने लगे। बलवान-गंधर्वों ने वहाँ आकर उन्हें बन्दी बना दिया। गन्धर्वों के बल के आगे वे अपनी सब उद्दण्डता भूल गये। जब किसी के द्वारा साधु-स्वाभाव राजा युधिष्ठर को इस दुर्दशा का पता चला तो वे तुरन्त ही दयार्द्र हो उठे। भीम, अर्जुन आदि को बुलाकर कहने लगे कि-भीम! अर्जुन! तुम शस्त्र लेकर शीघ्र वहाँ पहुँचो। अपने दुर्योधनादि भाइयों को गन्धर्वों से छुड़ा लो। विलम्ब न क़रो, वे बड़े दुखी होते होंगे। भीम ने युधिष्ठिर से कहा--भाई! आप क्या कह रहे हैं? उन नीचों को अपने कुकृत्य का फल मिल रहा है। उनको अपने किये हुए दुष्ट-कर्मों का फल भोगने दीजिए, उन दुष्टों को छुड़ाने के लिए हमें आदेश क्यों दे रहे हैं? वे तो अपने जन्मजात विरोधी हैं। उन्होंने हमारा सब कुछ छीनकर हमें कंगाल बना दिया है।

पाण्डव श्रेष्ठ युधिष्ठिर ने भीम से कहा--भीम! वे अपने भाई हैं, घर में भाइयों से लड़ाई-टंटा होता ही रहता है। परन्तु

बात है कि हार दीखता है अवश्य, परन्तु मिलता नहीं। फिर हार के लिए उसने बार-बार प्रयत्न किया परन्तु उसको हार मिला नहीं। बहुत दुखी होकर वह वहाँ से चल पड़ा।

इसी प्रकार दूसरा यात्री आया। उसने भी सरोवर में हार देखा! वह भी उसे लेने के लिए कूद पड़ा, खूब प्रयत्न किया, परन्तु उसका भी प्रयत्न निष्फल हो गया। वह बार-बार हार को सरोवर में देखता रहा और प्राप्त करने के लिए पुनः-पुनः प्रयत्न करता रहा परन्तु हार उसे भी नहीं मिल सका। "दीखता है परन्तु मिलता नहीं" वह भी आश्चर्य के साथ ऐसे कहता हुआ वहाँ से बिदा हो लिया।

इस प्रकार सरोवर के तट पर अनेक यात्री आए, सबने विविध प्रयत्न किये, परन्तु कोई भी हार प्राप्त करने में सफल नहीं हुआ। क्योंकि वहाँ पर हार वस्तुतः नहीं था।

एक यात्री बड़ा बुद्धिमान तथा सत्संगी था, उसने अनेक व्यक्तियों के मुख से "दीखता है, परन्तु मिलता नहीं" ऐसा सरोवर का वृत्तान्त पहले ही सुन रखा था। वह भी वहाँ आया। आकर उसने ध्यान से देखा। विचार करने पर मालूम हुआ कि सरोवर का हार प्रतिबिम्ब मात्र (आभास मात्र) है। अतएव उसके वास्तविक स्वरूप का अन्वेषण करना चाहिए। वह अन्य मूढ़ यात्रियों के समान नीचे देखने के बदले ऊपर देखने लगा। ऊर्ध्वदृष्टि करने पर उसको वास्तविक विद्यमान हार का समुज्वल-मनोहर स्वरूप दीख पड़ा। वृक्ष के ऊपर चढ़कर उसने सर्वोच्च शाखा पर स्थित हार को प्राप्त कर लिया।

❑❑

सज्जन की सज्जनता

जिस समय युधिष्ठरादि--पाण्डव वन में निवास कर रहे थे और साधु-महात्माओं के समान अकिंचन हो, झोपड़ियों में वन्यफल-मूलादि से उदर निर्वाह किया करते थे; उस समय दुर्योधनादि-कौरवों ने पाण्डवों को नीचा दिखाने एवं संताप देने के लिए उनके निवास के समीप ही गड्ढा तट पर बड़े भारी वन-महोत्सव का आयोजन किया। अच्छे-अच्छे वस्त्रालंकारों से सुसज्जित होकर अपनी-अपनी रानियों के साथ वाहनों में बैठकर अपने बल-ऐश्वर्यादि के सूचक-गलगर्जन हँसी-मजाक आदि करते हुए वहाँ ये जाने लगे। बलवान-गंधर्वों ने वहाँ आकर उन्हें बन्दी बना दिया। गन्धर्वों के बल के आगे वे अपनी सब उद्दण्डता भूल गये। जब किसी के द्वारा साधु-स्वाभाव राजा युधिष्ठर को इस दुर्दशा का पता चला तो वे तुरन्त ही दयार्द्र हो उठे। भीम, अर्जुन आदि को बुलाकर कहने लगे कि-भीम! अर्जुन! तुम शस्त्र लेकर शीघ्र वहाँ पहुँचो। अपने दुर्योधनादि भाइयों को गन्धर्वों से छुड़ा लो। विलम्ब न करो, वे बड़े दुखी होते होंगे। भीम ने युधिष्ठिर से कहा--भाई! आप क्या कह रहे हैं? उन नीचों को अपने कुकृत्य का फल मिल रहा है। उनको अपने किये हुए दुष्ट-कर्मों का फल भोगने दीजिए, उन दुष्टों को छुड़ाने के लिए हमें आदेश क्यों दे रहे हैं? वे तो अपने जन्मजात विरोधी हैं। उन्होंने हमारा सब कुछ छीनकर हमें कंगाल बना दिया है।

पाण्डव श्रेष्ठ युधिष्ठिर ने भीम से कहा--भीम! वे अपने भाई हैं, घर में भाइयों से लड़ाई-टंटा होता ही रहता है। परन्तु

इस समय वे संकट में फँसे हुए हैं, दूसरे लोग उन्हें कष्ट दे रहे हैं, उनको छुड़ाना अपना कर्त्तव्य है। दूसरों के साथ मुकाबला करने के लिए हम पाँच भाई नहीं, १०५ भाई हैं। महाभारत में युधिष्ठिर के ये शब्द बड़ा ही महत्व रखते हैं।

आपसी कलह में कौरव सौ हैं, हम पाण्डव पांच हैं। परन्तु जब दूसरों के साथ लड़ाई हो रही हो तब हम पांच भाई ही नहीं रहते १०५ भाई हो जाते हैं।

इस प्रकार साधु स्वभाव के मनुष्य, अपने को व्यथित करने वालों को भी व्यथा देखकर स्वयं व्यथित हो जाते हैं, और उनको व्यथा से मुक्त कराने के लिए प्रयत्न किये बिना नहीं रह सकते। महाराज युधिष्ठिर से प्रेरित हुए भीमार्जुनादि ने वहाँ जा गंधर्वों से युद्ध कर कौरवों को छुड़ाया। यही है--सज्जनों की सज्जनता। दुर्जन जब अपनी दुर्जनता नहीं छोड़ता, तब सज्जन अपनी सज्जनता क्यों छोड़ेगा? नहीं छोड़ सकता। इसीलिए कहा गया है कि--

"उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरूच्यते।।"

उपकारी के प्रति जो साधुता प्रदर्शित करता है; अर्थात् उपकार करता है, उसकी साधुता में क्या गुण है? उपकार के लिये किया, इसमें कौन सी प्रशंसा की बात हुई। जो अपकारी के प्रति भी साधु बना रहता है, अर्थात् अपकार न कर उपकार करता है वही प्रशंसनीय साधु है, सज्जन हैं।

जो तुझको काँटा बोवे, बो तू उसको फूल।
तुझको फूल का फूल है, वाही को त्रिसूल।।
"नारायण" दो बात को दीजै सदा बिसार।
कई बुराई और ने आप किये उपकार।।

□□

संयम के कारण

बात उन दिनों की है जब नेपोलियन छात्रावास में था। उन दिनों अक्लोनी नामक स्थान में उन्हें एक नाई के घर में रहना पड़ा था। नेपोलियन बहुत सुन्दर एवं सुकुमार थे, उनकी आकृति में आकर्षण था। नाई की स्त्री उन पर मुग्ध हो गई थी और नेपोलियन को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न निरन्तर करती रहती थी। लेकिन नेपोलियन को तो अध्ययन से ही अवकाश नहीं मिलता था। वह स्त्री जब भी उनसे हँसने-बोलने का प्रयास करती, तब-तब उन्हें किसी न किसी पुस्तक में निमग्न देखती। इस कारण उस स्त्री की इच्छा की पूर्ति नहीं हुई।

समय बीता। वही नेपोलियन देश का सेनापति चुना गया। सेनापति होने के बाद उसी नाई के यहाँ जाने का एक बार फिर अवसर आया। तब वे काफी बड़े हो गये थे, पहचाने भी नहीं जा सकते थे। दुकान पर नाई की स्त्री बैठी थी। नेपोलियन ने उसके पास जाकर पूछा--'क्या तुमको स्मरण है कि कभी तुम्हारे यहाँ बोनापार्ट नाम का कोई युवक कुछ दिनों के लिये रहा था।'

नाई की स्त्री झुँझलाकर बोली--'बस--'बस' रहने दें महोदय वैसे नीरस व्यक्ति का मैं नाम लेना भी पसन्द नहीं करती। किसी से मीठी बात करना तो उसने सीखा ही न था। यहाँ तक कि उसको नाचना-गाना भी नहीं आता था। वह तो पुस्तकों का कीड़ा मात्र था।

नेपोलियन हँसा और बोला--ठीक कहती हो देवी, संयम ही मनुष्य को महान बनाता है। बोनापार्ट तुम्हारी रसिकता में उलझ गया होता तो देश का प्रधान सेनापति होकर तुम्हारे सामने आज कैसे खड़ा हो सकता था?

❑❑

सादगी

रामशास्त्री, पेशवा माधव राव के गुरु थे, साथ ही वे पेशवा के मन्त्री और राज्य के न्यायधीश भी थे। फिर भी उनका रहन-सहन और पहनावा बड़ा सादा और मामूली था।

एक बार उनकी पत्नी किसी पर्व के अवसर पर राजभवन में गई। उनकी अत्यन्त साधारण वेशभूषा देखकर रानी चकित रह गई। रानी ने उन्हें कीमती कपड़े और रत्नजड़ित आभूषण पहनाये, फिर राजसी पालकी में उन्हें विदा किया। पालकी रामशास्त्री के घर पहुँची। कहारों ने द्वार खटखटाया। द्वार खुला और फिर तुरन्त बन्द हो गया।

कहार बोले--'शास्त्री जी, आपकी धर्मपत्नी आयी है।'

शास्त्री जी बोले--'मेरी पत्नी ऐसे कीमती कपड़े और गहने नहीं पहन सकती। वस्त्राभूषण से सजी हुई यह देवी कोई और ही है। तुम लोग भूल से यहाँ आ गए हो।'

शास्त्री जी की पत्नी अपने पति स्वभाव को खूब पहचानती थी। उन्होंने कहारों को राजभवन लौट चलने को कहा। रनिवास में पहुँचकर उन्होंने रानी से कहा--'आपके इन वस्त्र और आभूषणों ने तो मेरे घर का द्वार ही मेरे लिए बन्द कर दिया।'

सब कपड़े-गहने उतारकर और अपने साधारण कपड़े पहनकर शास्त्री जी की पत्नी पैदल ही घर लौटी। इस बार रामशास्त्री सजल, गर्वोन्नत नेत्रों से अपनी धर्मपत्नी का स्वागत करने के लिये प्रस्तुत थे।

सचमुच सादगी का कितना अनुपम आदर्श है यह।

□□

अच्छी फसल

जर्मनी की सेना का कोई उच्चाधिकारी किसी युद्ध के समय अपने शिविर से कुछ सैनिकों को साथ लेकर घोड़ों के लिये घास एकत्रित करने के लिये चला। समीप में एक गाँव के किसान को उन्होंने पकड़ा और कहा--'चलकर बताओ कि इस गाँव में किस खेत में अच्छी फसल है।'

विवश होकर किसान उन सैनिकों के साथ चल पड़ा। खेत लहलहा रहे थे। बहुत उत्तम फसल थी। सैनिक चाहते थे कि उन खेतों की फसल काट लें, किन्तु किसान बार-बार यही कहता जाता था--'कुछ और आगे चलिये, आगे बहुत अच्छी फसल है।'

धीरे-धीरे किसान सैनिकों को लगभग गाँव की सीमा के खेतों तक ले गया। वहाँ उसने एक खेत बतलाया। सैनिकों ने उस खेत से फसल काट कर गट्ठे बाँधे और घोड़ों पर रख लिये। सैनिक अधिकारी ने क्रोधित होकर किसान को डाँटा--'तू, व्यर्थ ही हमें इतनी दूर ले आया। इससे अच्छी फसल तो पास के खेत में ही थी।'

किसान ने कहा--'मैं जानता हूँ कि आप लोग खेत के स्वामी को फसल का मूल्य नहीं देंगे। इतना समझते हुए मैं किसी दूसरे का खेत बतला कर उसकी हानि कैसे करा सकता था? यह मेरा अपना खेत है। यह तो आप भी मानेंगे कि मेरे लिए तो इसकी फसल सबसे अच्छी फसल है।

सैनिक अधिकारी लज्जित हो गया उसने किसान को फसल के मूल्य के साथ पुरस्कार से सम्मानित किया।

□□

आपसी फूट

एक व्यक्ति ने पक्षियों को फँसाने के लिये अपना जाल बिछाया। जाल में दो पक्षी फँसे, किन्तु उन पक्षियों ने झटपट सलाह की और जाल को लेकर उड़ने लगे। व्याध को यह देख कर बड़ा दुःख हुआ। वह उन पक्षियों के पीछे भूमि पर दौड़ने लगा।

कोई ऋषि अपने आश्रम में बैठे यह दृश्य देख रहे थे। उन्होंने व्याध को समीप बुलाकर पूछा--'तुम व्यर्थ क्यों दौड़ रहे हो? पक्षी तो जाल लेकर आकाश में उड़ रहे हैं।'

व्याध बोला--'भगवान अभी इन पक्षियों में मित्रता है। वे परस्पर मेल करके एक दिशा में उड़ रहे हैं। इसी से वे मेरा जाल लिये जा रहे हैं। परन्तु कुछ देर में इनमें झगड़ा हो सकता है। मैं उसी की प्रतीक्षा में इनके पीछे दौड़ रहा हूँ। परस्पर झगड़ा कर जब वे गिर पड़ेंगे, तब मैं इन्हें पकड़ लूँगा।'

व्याध की बात ठीक निकली। थोड़ी देर उड़ते-उड़ते जब वे पक्षी थकने लगे, तब उनमें इस बात को लेकर विरोध हो गया कि उन्हें कहाँ ठहरना चाहिये। विरोध होते ही उनके उड़ने की दिशा और पंखों की गति समान नहीं रह गयी। इसका फल यह हुआ कि वे उस जाल को सम्हाल नहीं सके। जाल के भार से लड़खड़ाकर स्वंय भी गिरने लगे और एक बार गिरना प्रारम्भ होते ही जाल में उलझ गये। अब उनके पंख भी फँस चुके थे। जाल के साथ वे भूमि पर गिर पड़े। व्याध की इच्छा की पूर्ति इस प्रकार हो गई। यह महाभारत का प्रसंग है। व्याध की दूरदर्शिता सचमुच सराहनीय रही।

□□

स्वावलम्बन

एक दिन बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् साधु हृदय श्री विद्यासागर को रास्ते में एक भिखारी मिल गया। वह उनके सामने हाथ फैला कर पैसा मांगने लगा। श्री विद्यासागर ने पूछा- 'यदि मैं तुम्हें एक पैसे के स्थान पर एक रुपया दे दूँ तो तुम उसका क्या करोगे?'' वह बालक रुपये की बात सुनकर प्रसन्न हुआ। उसने कहा- 'बाबूजी! मैं भीख मांगना ही छोड़ दूँगा।'

कुछ दिन बाद बाजार में एक युवक ने श्री विद्यासागर को प्रणाम किया और कहा- 'बाबूजी! कृपया मेरी दुकान पर चल कर उसे पवित्र कीजिए।

श्री विद्यासागर उस युवक की बात टाल न सके। थोड़ी ही देर में फल की बड़ी दुकान के सामने उन्होंने अपने को खड़ा पाया। युवक ने कहा- 'बाबूजी! यह दुकान आपकी ही है। शायद आपको याद होगा कि एक बार भिखारी बालक को एक पैसे के बदले आपने एक रुपया दिया था और यह मन्त्र सिखाया था कि भगवान की कृपा का भरोसा करके 'मनुष्य को अपनी आजीविका आप कमानी चाहिए।' उस रुपये से मैंने फल खरीदकर बेचे। अगले दिन पुनः वैसा ही किया। भगवान् की कृपा से धीरे-धीरे मेरी पूँजी बढ़ती गयी और आज इतनी बड़ी दुकान बन गयी।'

श्री विद्यासागर बहुत प्रसन्न हुए। बालक को और अधिक उन्नति करने का आशीर्वाद देते हुए उन्होंने कहा- 'बेटा! जो लोग तुम्हारी तरह शिक्षा ग्रहण करते हैं और भगवान् की कृपा का भरोसा करके अपने पैरों पर खड़ा होना चाहते हैं, उनके लिए यह सफलता कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है।'

❑❑

आपसी फूट

एक व्यक्ति ने पक्षियों को फँसाने के लिये अपना जाल बिछाया। जाल में दो पक्षी फँसे, किन्तु उन पक्षियों ने झटपट सलाह की और जाल को लेकर उड़ने लगे। व्याध को यह देख कर बड़ा दुःख हुआ। वह उन पक्षियों के पीछे भूमि पर दौड़ने लगा।

कोई ऋषि अपने आश्रम में बैठे यह दृश्य देख रहे थे। उन्होंने व्याध को समीप बुलाकर पूछा--'तुम व्यर्थ क्यों दौड़ रहे हो? पक्षी तो जाल लेकर आकाश में उड़ रहे हैं।'

व्याध बोला--'भगवान अभी इन पक्षियों में मित्रता है। वे परस्पर मेल करके एक दिशा में उड़ रहे हैं। इसी से वे मेरा जाल लिये जा रहे हैं। परन्तु कुछ देर में इनमें झगड़ा हो सकता है। मैं उसी की प्रतीक्षा में इनके पीछे दौड़ रहा हूँ। परस्पर झगड़ा कर जब वे गिर पड़ेंगे, तब मैं इन्हें पकड़ लूँगा।'

व्याध की बात ठीक निकली। थोड़ी देर उड़ते-उड़ते जब वे पक्षी थकने लगे, तब उनमें इस बात को लेकर विरोध हो गया कि उन्हें कहाँ ठहरना चाहिये। विरोध होते ही उनके उड़ने की दिशा और पंखों की गति समान नहीं रह गयी। इसका फल यह हुआ कि वे उस जाल को सम्हाल नहीं सके। जाल के भार से लड़खड़ाकर स्वंय भी गिरने लगे और एक बार गिरना प्रारम्भ होते ही जाल में उलझ गये। अब उनके पंख भी फँस चुके थे। जाल के साथ वे भूमि पर गिर पड़े। व्याध की इच्छा की पूर्ति इस प्रकार हो गई। यह महाभारत का प्रसंग है। व्याध की दूरदर्शिता सचमुच सराहनीय रही। ❑❑

स्वावलम्बन

एक दिन बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् साधु हृदय श्री विद्यासागर को रास्ते में एक भिखारी मिल गया। वह उनके सामने हाथ फैला कर पैसा मांगने लगा। श्री विद्यासागर ने पूछा- 'यदि मैं तुम्हें एक पैसे के स्थान पर एक रुपया दे दूँ तो तुम उसका क्या करोगे?'' वह बालक रुपये की बात सुनकर प्रसन्न हुआ। उसने कहा- 'बाबूजी! मैं भीख मांगना ही छोड़ दूँगा।'

कुछ दिन बाद बाजार में एक युवक ने श्री विद्यासागर को प्रणाम किया और कहा- 'बाबूजी! कृपया मेरी दुकान पर चल कर उसे पवित्र कीजिए।

श्री विद्यासागर उस युवक की बात टाल न सके। थोड़ी ही देर में फल की बड़ी दुकान के सामने उन्होंने अपने को खड़ा पाया। युवक ने कहा- 'बाबूजी! यह दुकान आपकी ही है। शायद आपको याद होगा कि एक बार भिखारी बालक को एक पैसे के बदले आपने एक रुपया दिया था और यह मन्त्र सिखाया था कि भगवान की कृपा का भरोसा करके 'मनुष्य को अपनी आजीविका आप कमानी चाहिए।' उस रुपये से मैंने फल खरीदकर बेचे। अगले दिन पुनः वैसा ही किया। भगवान् की कृपा से धीरे-धीरे मेरी पूँजी बढ़ती गयी और आज इतनी बड़ी दुकान बन गयी।'

श्री विद्यासागर बहुत प्रसन्न हुए। बालक को और अधिक उन्नति करने का आशीर्वाद देते हुए उन्होंने कहा- 'बेटा! जो लोग तुम्हारी तरह शिक्षा ग्रहण करते हैं और भगवान् की कृपा का भरोसा करके अपने पैरों पर खड़ा होना चाहते हैं, उनके लिए यह सफलता कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है।'

❑❑

अद्भुत कर्त्तव्य पालन

सरदार चूड़ावत का विवाह हुए अभी थोड़े ही दिन हुए थे। पत्नी जैसी रूपवती थी, वैसी ही गुणवती भी।

औरंगजेब के अत्याचारों का प्रतिरोध करने के लिए राजपूतों को युद्ध के लिए आये दिन तैयार रहना पड़ता था। ऐसी ही एक चुनौती फिर सामने आ गयी। चूड़ावत को दूसरे ही दिन युद्ध का मोर्चा संभालने का आदेश मिला।

एक ओर कर्तव्य की पुकार, दूसरी ओर नवविवाहिता पत्नी का आकर्षण! सरदार का मन दोनों ओर डोलने लगा। मोर्चे पर जायें या नहीं? दोनों ही ओर उसका मन बढ़ने-लौटने लगा।

पति को असमंजस में पड़ा हुआ देखकर रानी की चिन्ता बढ़ी। उसने कारण पूछा तो सरदार ने अपनी अन्तर्व्यथा कह सुनायी।

रानी गम्भीर हो गयी। उसने सोचा- 'मेरा आकर्षण यदि पति को कर्तव्य पथ से विचलित करने वाला है तो मेरा न रहना ही देश धर्म के हित में होगा। मुझे अपना बलिदान करके पतिदेव की द्विविधा मिटानी चाहिए ताकि वे एकाग्रचित्त से कर्त्तव्य पालन कर सकें।

उसने एक हाथ में तलवार ली और दूसरे से बाल पकड़े। रानी ने पूरे बल से वार किया और सिर कटकर चूड़ावत की गोद में जा गिरा!

कर्त्तव्य पथ से विचलित न होने देने के लिए जहाँ नारियों में इतना आत्मबल भरा पड़ा हो, वहाँ नर के लिए कायरता अपनाना सम्भव नहीं हो सकता। चूड़ावत ने घोड़ा युद्ध-क्षेत्र की ओर बढ़ाया और बिजली की तरह शत्रु दल पर टूट पड़ा।

भगवान् का पेट कब भरता है?

प्राचीन काल में एक परम शिव भक्त राजा था। एक दिन उसे कल्पना सूझी कि आगामी सोमवार को अपने इष्टदेव शंकर का हौद दूध से लबालब भर दिया जाए। हौद काफी गहरा और चौड़ा था। उसने प्रधान से मन्त्रणा की। प्रधान ने लगे हाथ डुग्गी पिटवा दी- 'सोमवार को सारे ग्वाले शहर का पूरा दूध लेकर मन्दिर चले आयें। हौद भरना है, राजा की आज्ञा है। जो इसका उल्लंघन करेगा, वह कठोर दंड का भागी होगा।

सारे ग्वाले घबरा उठे। उस दिन किसी ने घूँट भर भी दूध अपने बच्चों को नहीं पिलाया। कुछ ने तो बछड़ों को गाय के मुँह लगाते ही छुड़ा दिया।

दूध आया और हौद में छोड़ा गया। हौद थोड़ा खाली ही रह गया। राजा बड़ी चिन्ता में पड़ गया। इसी बीच एक बुढ़िया आयी। भक्ति-भाव से उसने लुटियाभर दूध चढ़ाकर भगवान से कहा- 'शहर के दूध के आगे मेरी लुटिया की क्या बिसात है? फिर भी, भगवान! बुढ़िया की श्रद्धा भरी ये बूँदें स्वीकार करो।'

दूध चढ़ाकर बुढ़िया बाहर आयी। सभी ने देखा- भगवान् का हौद एकाएक भर गया। उन्होंने राजा से जाकर कहा। राजा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

दूसरे सोमवार को राजा ने फिर वैसा ही ओदश दिया और गांव भर का दूध महादेव जी की हौद में छोड़ा गया, फिर हौद खाली ही रहा। पहले की तरह बुढ़िया आयी और उसकी लुटिया का दूध छोड़ते ही हौद भर गया। राजसेवकों ने राजा को जाकर पुनः सारा वृत्तान्त सुनाया।

राजा का आश्चर्य उत्तरोत्तर बढ़ता गया। अगली बार उसने स्वयं उपस्थित होकर रहस्य का पता लगाने का निश्चय किया।

तीसरा सोमवार आया। इस बार गांव का दूध राजा ने अपने सामने हौद में डलवाया। हौद खाली ही रह गया। इसी बीच बुढ़िया आयी और उसके लुटिया उड़ेलते ही हौद भर गया। बुढ़िया पूजा करके निकल गयी।

राजा भी उसके पीछे हो लिया। कुछ दूर जाने के बाद उसने बुढ़िया का हाथ पकड़ा। वह काँपने लगी। राजा ने अभय दिया और उससे रहस्य की जिज्ञासा करते हुए कहा- 'बताओ; क्या बात है, तुमने कौन सा जादू कर दिया, जो हौद एकाएक भर गया?

बुढ़िया ने कहा- 'बेटा'! जादू वादू कुछ नहीं। घर के बाल-बच्चों, ग्वालवालों, वृद्धों-रोगियों-सभी को पिलाकर बचे हुए दूध में से एक लुटिया लेकर मैं आती हूँ। सभी को तृप्त करके शेष दूध भगवान को चढ़ाते ही वे प्रसन्न हो जाते हैं, भाव से उसे ग्रहण करते हैं और हौद भर जाता है। किंतु तुम राजबल से गांव के सारे बाल-बच्चों, ग्वाल-बालों, रुग्ण-बूढ़ों का पेट काटकर उन्हें तड़पता रख कर सारा दूध अपने कब्जे में करते हो और उसे भगवान् को चढ़ाते हो तो उनकी आह से भगवान् उसे ग्रहण नहीं करते। इसीलिए हौद खाली रह जाता है।

राजा को अपनी भूल समझ में आयी। वह बुढ़िया को प्रणाम कर लौट गया और ऐसी हरकतों से विरत हो गया।

❑❑

सहृदयता

समय के पाबन्द और घड़ी की सूई के साथ चलने वाले स्वर्गीय लाल बहादुर शास्त्री तब रेल-मन्त्री थे। वे सरदार नगर में हो रहे एक सम्मेलन में जा रहे थे। मार्ग में एक बड़ा गांव पड़ता था। उस गांव से जब वे गुजर रहे थे तो कुछ ग्रामीणों ने उनकी कार रोक ली।

पूछा गया 'क्या बात है?' ग्रामीणों ने कहा- 'एक गरीब किसान औरत की प्रसूति का समय निकट है। कोई वाहन मिल नहीं रहा है और उसे पास के शहर के अस्पताल भिजवाना है। यदि आप इस गाड़ी में उसे ले जाने दें तो अच्छा है।'

'नहीं, यह गाड़ी एक सरकारी काम से सरदारनगर जा रही है। शास्त्री जी के ही किसी सहयात्री ने तत्काल उत्तर दिया। ग्रामीणों ने अनुनय करते हुए पुनः कहा- 'जी, उसे भी सरदार नगर ही ले जाना है।'

बात को अनसुनी करते हुए सहयात्री अधिकारियों ने ड्राइवर को गाड़ी चलाने को कहा, लेकिन शास्त्री जी तुरन्त ही गाड़ी से नीचे उतर पड़े और बोले- 'ले आओ उस बहिन को अपनी गाड़ी से मैं बहिन को समीपस्थ शहर पहुँचा दूँगा।'

इस पर उनके साथी ने कहा- 'श्रीमन्! देर होती जा रही है और आप अभी यहीं खड़े हैं। वे लोग घण्टे भर से पहले नहीं आयेंगे।'

'न आने दो! सम्मेलन से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है उस बहिन की स्थिति। हम एक जनसेवक कहलाते हुए भी ऐसे नाजुक मौकों पर मुकर जाँय तो इससे बड़ी आत्मप्रवंचना और क्या होगी?' शास्त्री जी ने कहा। उस स्त्री को सरदारनगर पहुँचा कर ही श्री शास्त्री जी माने। ऐसी थी उनकी सहृदयता! यही कारण है कि आज भी देशवासियों के द्वारा श्रद्धा से स्मरण किये जाते हैं। ❑❑

हृदय-परिवर्तन

मुसलामानों के चौथे खलीफा हजरत अली निहायत ईमानदार, नेक और शरीफ इन्सान थे। वे खुदा से डरने वाले तथा बहादुर थे। लड़ाइयों में उन्होंने कमाल कर दिखाया था।

उन जैसा कमाल का योद्धा दूर-दूर तक नहीं था। उन्होंने बहादुरी में जो कमाल हासिल किया था, वह सब अपनी मजबूत ढाल के कारण किया था।

एक दिन उसी ढाल की चोरी हो गयी। अली को बड़ा आश्चर्य हुआ। खलीफा की ढाल चोरी हो जाय, यह कोई मामूली घटना नहीं थी। खबर आग की तरह सारे शहर में फैल गयी।

एक दिन खलीफा गमगीन बैठे थे। एक आदमी आया और बोला- 'हुजूर चोर पकड़ गया।'

'कौन सा चोर?'

'वही जिसने आपकी ढाल चुरायी थी। आप हुजूर, हुकुम दें, उस नालायक को जूतों से....................'

'नहीं-नहीं- ऐसा मत कहो। हम कौन होते हैं सजा देने वाले।

मुकदमा शहर-काजी के सामने पेश किया गया। दोनों आमने-सामने कटघरे में खड़े कर दिये गये।

काजी खलीफा से बोला- 'यह ढाल आपकी है? इसका सबूत ?'

'मेरा बेटा इस ढाल को अच्छी तरह पहचानता है।'

'अदालत बेटे की गवाही नहीं मान सकती।'

'हुजूर, मैं अपने नौकर को पेश करता हूँ।'

'नौकर आपका अपना आदमी है। और कोई गवाह हो तो पेश कीजिए।

इनके अलावा हजरत अली और किसको पेश करते? बोले- 'सच्चे गवाह तो ये ही हैं मेरे पास।'

माकूल गवाह न होने के कारण फैसला हजरत अली के खिलाफ हुआ। ढाल चोर को वापस मिल गयी।

हजरत अली चुपचाप सिर झुका कर चल दिये। बाहर आये तो चोर उनके पैरों में गिर गया और बोला 'मैं शर्मिन्दा हूँ हुजूर! यह लीजिए अपनी ढाल। न्याय बड़ा अन्धा होता है। आपकी ढाल को कौन नहीं जानता हुजूर! एक नहीं लाखों गवाह पेश कर सकते थे आप.......।' चोर की आँखों से आँसू उमड़ पड़ रहे थे।

❑❑

समय का मूल्य

बैंजामिन फ्रैंकलिन की पुस्तकों की दुकान थी। उनकी दुकान पर एक व्यक्ति आया, उसने पूछा-

'इस पुस्तक की कीमत क्या है?'

उत्तर दिया 'एक डालर।'

'कुछ कम नहीं?'

'बिल्कुल नहीं।'

पुस्तक खरीदने वाला कुछ समय तक इधर-उधर घूम कर आया और पुनः पूछा- 'फ्रैंकलिन अन्दर हैं? मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।'

फ्रैंकलिन अन्दर से आये- 'बताइये क्या बात है?'

आगन्तुक व्यक्ति ने पूछा- 'इस पुस्तक की कीमत कम से कम क्या लेंगे?'

फ्रैंकलिन - 'सवा डालर'।

ग्राहक के आश्चर्य का पार न रहा, उसने कहा- 'अभी तो आपके कर्मचारी ने एक डालर कहा था।'

'जी हाँ, यह चौथाई डालर मेरा अमूल्य समय नष्ट करने के लिये देना पड़ेगा'- फ्रैंकलिन ने कहा।

'अच्छा, तो आप अब सही-सही कीमत बता दीजिए।

'अब डेढ़ डालर। आप जितना समय हमारा बर्बाद करेंगे उतनी ही इसकी कीमत बढ़ेगी।'

फ्रैंकलिन यह सुनकर अन्दर जाने लगे। ग्राहक ने चुपचाप डेढ़ डालर देकर पुस्तक खरीद ली।

उसे उस दिन ज्ञात हुआ कि वस्तुतः समय का कितना महत्व है।

ACC NO...104328
DATE...26-3-02